वेद और उनका साहित्य

लेखक
आचार्य श्री चतुरसेन वैद्य शास्त्री

प्रकाशक
श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति
इन्दौर

मूल्य पांच रुपया

प्रवचन

वेद के प्रति मैं अपने को अधिकारहीन और अज्ञानी समझता हूँ। इसलिए इस छोटीसी पुस्तक में मैंने यथा संभव कोई ऐसी बात नहीं कही है जो मेरी अपनी निजू सम्मति या मत की द्योतक हो, मैंने केवल पौर्वात्य और पाश्चात्य वेद पंडितों का मत–उनका अल्पवाद और विचार शैली की बहुत स्थूल रूप रेखा ही यहाँ दी है। इससे मेरा उद्देश्य केवल इतना ही है, ललावकि वेद प्रेमियों को, जो सामवेद का नाम ही जानते हैं वेद के संबंध में और उनके प्रति संसार के वेदज्ञ पंडितों के मतों के संबंध में कुछ धुन्धली-सी विचार रेखा उत्पन्न हो जाय।

मेरा अपना यह मत अब बहुत प्रसिद्ध हो गया है कि मैं धर्म को और धार्मिक भावना से संसार में आदर पाई पुस्तकों को तिरस्कार एवं संदेह की दृष्टि से देखता हूँ। जगत्पूज्य वेद भी मेरी इस कुत्सित भावना से बचे नहीं। परन्तु मैं इसमें कर भी क्या सकता था, मैं तो आँखें खोल कर सदा ही देखता रहा हूँ कि धर्म और उसके साहित्य ने सहस्रों वर्षों से मनुष्य के मस्तिष्क को गुलाम बना दिया है। और वह स्वतन्त्रता से उनके विषय में नहीं सोच सकता।

मैं वेदों को धर्मग्रन्थ करके नहीं, आर्यों का, बल्कि कहना चाहिए, मनुष्य के विकास का सर्व प्राचीन उद्गार मानता हूँ। मैं उसमें वे सब कोमल भावनापूर्ण रस-स्रोत जो हृदय को विभोर कर देते हैं देख पाता हूँ। साथ ही वे मूल विज्ञान भी जिन्हें लाखों वर्ष तक मनन और अनुभव करके मनुष्य का मस्तिष्क बहुदर्शी हो गया है, वेदों के प्रसाद स्व-

रूप जानता हूँ। मैं वेदों को ईश्वर कृत मानने से इन्कार करता हूँ। और वेद के किसी ग्रन्थ में कोई अमोघ शक्ति या चमत्कार है जिसके जाप या अनुष्ठान से कुछ खास प्रभाव हो सकता है, यह भी नहीं मानता। मैं वेद मन्त्र पढ़कर भाँति-भाँति के आडम्बरयुक्त यज्ञ करने की रीतियों को भी, जिसने शताब्दियों तक बड़े बड़े सम्राटों को बेवकूफ बनाया, और मनुष्य जाति के लिए अनावश्यक ब्राह्मणों की जाति बनायी-भद्दा पाखंड समझता हूँ।

मुझे बहुत दुःख है कि आर्य समाज भी वेदों के प्रति एक दर्जे तक अंध विश्वास में है। यदि दयानन्द कुछ दिन और मनन करते तो कदाचित् उस अविश्वास के मूल का भी नाश कर देते। वेदों के सम्बन्ध में दो आपत्तिजनक विचार—जो युग कर्म की प्रगति के विपरीत एवं बुद्धिवाद से अग्राहक हैं आर्य समाज मे रूढ़ि के तौर पर स्वीकृत हैं। एक यह कि वेद ईश्वर कृत है। दूसरे यज्ञ धर्म कृत्य है। पहली बात को आर्य समाज के बहुतेरे विद्वान दबी जबान से कहते हैं। तथा संदिग्ध भाव रखते हैं। पर खुल कर विरोध नहीं कर सकते, परन्तु दूसरे विषय में आर्य समाज यद्यपि उन पाखण्डपूर्ण यज्ञों का समर्थक नहीं जैसे ब्राह्मण काल से बुद्ध के जन्म-काल तक प्रचलित थे। वे हवन और नित्य-कर्म की भाँति उसे करते हैं। फिर भी हमारे पास इस बात के प्रमाण हैं कि बहुत आर्य समाजी लोगों ने १०-१० हजार रु लगाकर यज्ञ किये हैं, और उनमें यह विश्वास रहा है कि यज्ञों का आध्यात्मिक प्रभाव होता है।

जो हो, मेरी तो यही एकान्त कामना है कि इस छोटी-सी पुस्तक को पढ़कर जन साधारण—खास कर शिक्षित युवक गण वेदों के विषय में कुछ धारणा बना सकें। और वेद साहित्य के प्रति उनका कुछ परिचय हो जाय।

मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि कुछ मित्र मेरी अच्छी तरह छीछालेदर करेंगे। आर्य समाज के बंधु भी मुझे क्षमा न करेंगे। सनातन

धर्मियों का तो मैं प्रथम ही अक्षम्य गुनहगार हूँ। अतः क्षमा और दया की आशा त्याग कर मैं अभी से नत मस्तक होकर बैठ जाता हूँ। मैं परमेश्वर से यही चाहता हूँ कि वह मुझे स्वतन्त्रतापूर्वक अपने विचार प्रकट करने की सामर्थ्य दे और इसके लिए प्रहार सहने की शक्ति और सौभाग्य भी।

संजीवन-इन्स्टीट्यूट
दिल्ली, शहादरा

श्रीचतुरसेन वैद्य

विषय सूची

वेद और उनका साहित्य

प्रथम अध्याय

वेद

वेद पृथ्वी भर के अत्यन्त प्राचीन और सम्माननीय पवित्र ग्रन्थ हैं। आज भी ये आर्य सभ्यता के द्योतक और हिन्दू धर्म के प्रामाणिक पथ दर्शक हैं। असंख्य सम्प्रदायों में छिन्न-भिन्न, और अनेक कुसंस्कारों से व्यस्त हिन्दू जाति आज भी वेदों के सामने एक मत से सिर झुकाती है। इनका इतना महत्वपूर्ण स्थान होने पर भी ये अब तक परमगोपनीय, गहन और अजेय बने रहे हैं। इसलिए हम वेदों का साधारण सा परिचय इन अध्यायों में पाठकों को कराना चाहते हैं।

वेद आर्यों का सब से प्राचीन साहित्य है। पाश्चात्य जगन्मान्य विद्वानों ने भी ऋग्वेद को मानवीय सभ्यता का आदि ग्रन्थ स्वीकार किया है। महर्षि दयानन्द वेदों का काल १ अरब ९६ करोड़, ८ लाख ५२ हजार ६ सौ ८४ वर्ष मानते हैं—सायन भाष्यकार का भी यही मत है। इन विद्वानों के मत से वेद ईश्वर कृत साहित्य है और सृष्टि के आदि काल में उसका उदय हुआ है। दिव्यात्मा तिलक ने गणित और ज्योतिष के आधार पर वेदों को मसीह से ६००० वर्ष पूर्व का सिद्ध किया है। इसी मत पर प्रायः योरुप के विद्वान स्थिर हैं।

बीच के समय में भारतवर्ष वेदों के असली वैज्ञानिक रूप को भूल गया था। वेद पाठी—कर्मकाण्डी—लोग जहाँ तहाँ, विशेष कर दक्षिण में वेद मन्त्र पढ़ा करते थे; परन्तु उनके अर्थ आदि का ज्ञान उनमें से बहुत कम लोगों को होता था। उन दिनों योरुप तो संस्कृत साहित्य

के महत्व के विषय में कुछ भी ज्ञान न रखता था। अतः जो जो योरपियन उन दिनों भारतवर्ष में आये उन्हें संस्कृत साहित्य और खास कर वेदों के विषय में कुछ भी ज्ञान न होने पाया। इसके सिवा भारतीय विद्वान्, जो वेदों के बहुत कम यथार्थ ज्ञाता थे, वेदों को खूब छिपाने और म्लेच्छों से बचाते रहते थे।

किन्तु यह कहना अत्युक्ति न होगा कि गत १०० वर्षों में योरप ने प्राचीन संस्कृत साहित्य को जीवित और महान बना दिया। लगभग १०० वर्ष हुए जब सर विलियम जोन्स ने शकुन्तला का अनुवाद करके योरप का ध्यान संस्कृत साहित्य की तरफ आकर्षित किया। इनने अपनी भूमिका में लिखा कि "एशिया के साहित्य की प्रकाशित अद्भुत वस्तुओं में से यह एक है और यह मनुष्य की कल्पना शक्ति की उन रचनाओं में सबसे कोमल और सुन्दर है, जो किसी युग या किसी देश में कभी भी की गई हों।" इसके बाद प्रसिद्ध कवि गेटे ने भी इस नाटक की बड़ी प्रशंसा की।

सर विलियम जोन्स ने इसके बाद एशियाटिक-सोसाइटी कायम की और मनु का अनुवाद किया, परन्तु वे प्राचीन संस्कृत साहित्य के भण्डार को तौभी न पा सके। वे केवल बुद्ध के पीछे के साहित्य की खोज में ही लगे रहे।

कोलब्रुक साहब ने भी इसी ढंग पर काम किया। वे गणित के बड़े विद्वान थे और योरप भर में संस्कृत के सबसे अधिक ज्ञाता थे। इनने वेदान्त, बीज गणित और हिन्दू गणित पर ग्रन्थ लिखे और अन्त में सन् १८०५ में सब से प्रथम इनने योरप को वेदों से परिचित कराया; परन्तु कोलब्रुक साहब उस समय तक भी वेदों का मूल्य न जान सके। उनने लिखा था—"अनुवाद कर्ता के श्रम का फल तो दूर रहा पाठकों को भी उनके श्रम का फल कठिनता से मिलेगा।"

फिर डा० एच० एच० विल्सन ने कोलब्रुक का अनुकरण किया। उनने ऋग्वेद संहिता का अंगरेजी अनुवाद किया। साथ ही उनने संस्कृत के कई नाटकों और मेघदूत तथा विष्णुपुराण का भी अनुवाद किया।

इसी समय फ्रान्स में एक बड़े विद्वान हुए। ये वर्नफ साहब थे। इनने जिन्दावस्ता और वेदों का तारतम्य मिलाया और एक तारतम्यात्मक व्याकरण भी बनाया। इनने ऋग्वेद की व्याख्या की और आर्य जाति के इतिहास पर उससे प्रकाश डाला तथा सीरिया के शंकु रूपी लेख भी पढ़े। फिर बौद्ध साहित्य का भी इनने उद्धार किया। इनने २५ वर्ष तक योरुप को प्राचीन संस्कृत साहित्य की शिक्षा दी। इनके शिष्यों में रॉथसाहब और प्रो० मैक्समूलर ने वेद साहित्य को बहुत कुछ स्पष्ट किया।

इसी बीच में जर्मन विद्वानों ने इस विषय में बहुत उद्योग किया और वे सबसे आगे बढ़ गये। रोजन साहब ने जो राजा राममोहनराय के समकालीन थे ऋग्वेद के प्रथम अष्टक को लैटिन भाषा में अनुवाद किया। परन्तु उनकी असमय में मृत्यु हो जाने से वे इस कार्य को पूर्ण न कर सके। उस समय के प्रसिद्ध विद्वानों-बॉप, ग्रिम, और हमबोल्ट आदि-के परिश्रम और प्रयत्नों से भाषा सम्बन्धी युगान्तर कारी तत्व प्रकट हुए। इन विद्वानों ने योरुप को मनवा दिया कि संस्कृत, जिन्द, ग्रीक, लैटिन, स्लेव, ट्यूटन और केल्टिक भाषाओं में परस्पर सम्बन्ध है और उनका मूल एक है। इस आविष्कार से संस्कृत सब भाषाओं की माता प्रमाणित हुई और उस शताब्दि के प्रबल विद्वान रॉथ साहब ने यास्क के निरुक्त का अपनी बहुमूल्य टिप्पणी के साथ सम्पादन किया। इसके बाद उनने ह्विटनी साहब के साथ अथर्ववेद का सम्पादन किया और बाहलिक साहब के साथ संस्कृत भाषा का एक पूर्ण कोश तैयार

कर डाला। इसके बाद ही लेमन साहब का विद्वत्ता पूर्ण बृहद् ग्रन्थ Indische-Alterthumskunde प्रकाशित हुआ। वेबर साहब ने शुक्ल यजुर्वेद और उसके ब्राह्मणों और सूत्रों को प्रकाशित किया। और अपने Indische-Sludien में बहुत से सन्दिग्ध विषयों की व्याख्या की और संस्कृत साहित्य का प्रामाणिक वृत्तान्त प्रकाशित किया फिर वेनथी साहब ने सामवेद का एक बहुमूल्य संस्करण प्रकाशित किया।

अन्त मे प्रो० मेक्समूलर ने समस्त प्राचीन संस्कृत साहित्य को समय के क्रम से सन् १८५९ में क्रम बद्ध किया। साथ ही सायण भाष्य के साथ ऋग्वेद भाष्य भी प्रकाशित किया। इस प्रकार यह दुर्लभ और परमगोप्य वैदिक साहित्य विद्यार्थियों के लिये सुगम हो गया।

भारतवर्ष में डाक्टर हॉग साहिब ने ऐतरेय ब्राह्मण का अनुवाद प्रकाशित किया। इसके बाद ऋषि दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेद संहिता का हिन्दी अनुवाद सर्व प्रथम किया। फिर यजुर्वेद का भी उनने सरल हिन्दी में अनुवाद किया। बगाल के पंडित सत्यव्रत सामश्रमी ने सायण के भाष्य सहित सामवेद का एक अच्छा संस्करण प्रकाशित कराया। इनने महीधर की व्याख्या के सहित शुक्ल यजुर्वेद को भी सम्पादित किया और एक निरुक्त का उत्तम संस्करण निकाला।

इस प्रकार दुर्धर्ष वेद गत १०० वर्षों में सार्वजनिक संपत्ति होने की श्रेणी तक आ गये हैं। अब तक इन के योरुप और भारत में जो संस्करण प्रकट हुए हैं उन सब की सूची इस प्रकार होती है:—

ऋग्वेद

१—(क) भाष्य:—

(१) सायण भाष्य, शब्दानुक्रमणि का प्रतीक सूची सहित। सम्पादक मैक्समूलर (इ० सं० १८४९—७५ द्वितीय सं० लंडन) १८९०—९२

(२) लैटिन अनुवाद (By Rosen 1830–38)

(३) फ्रेन्च अनुवाद (By Longlois 1848. 51)

(४) जर्मन अनुवाद by A. Ludwig. 6 Vols पूर्ण Prag 1876–88 (भूमिका, भाष्य, और Index सहित)

(५) जर्मन अनुवाद (By H. Grassman, Leip-Zig 1876-77)

(६) „ (By K. F. Gilduer Tubingen 1908)

दूसरा संस्करण—Gonttngen 1923.

(७) अनुवाद By Rudolf Roth.

(८) Roers edition of text of translation in Bibli Indica NO 1—4 (Calcutta 1849) दूसरे अध्याय तक

(९) इंगलिश अनुवाद By wilson

(१०) „ „ By Arrowsmith Boston 1886.

१६ (११) „ „ R. H. T. Goiffith बनारस 1889—92.

(१२) स्वामी शंकराचार्य के शिष्य आनन्द तीर्थ का भाष्य (सम्भवतः एक विशेष भाग पर)

इसके प्रथम अष्टक के दूसरे और तीसरे भाष्य पर जयतीर्थ की टीका है जो इण्डिया हाउस, लंडन पुस्तकालय में है।

(१२) सायण भाष्य Bomby thiosophical Publication Fund Bomday

(१३) ऋषि दयानन्द कृत भाष्य

शेष—आर्य भाष्य—

(ख) ऋग्वेद के ब्राह्मण—

(१) ऐतरेय ब्राह्मण—सायण भाष्य सहित, सम्पादक काशीनाथ शास्त्री, आनन्द आश्रम पूना, सन् १८९६ खण्ड १ व २,

(२) ऐतरेय ब्राह्मण सायण भाष्य सहित-संपादक सत्यव्रत सामश्रमी, ऐशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता सम्वत् १९५२-६२ खण्ड (1—4)

(३) ऐतरेय ब्राह्मण का इंगलिश अनुवाद—अनुवादक A. B. keith Harward Oriental Series vol 25-1920

(४) ऐतरेय ब्राह्मण Martin *Haug* द्वारा सम्पादित, प्रकाशक बम्बई सरकार १८६३

(५) Das Aitareya *Brahman* सम्पादक theodor An frecht Bom 1879.

(६) शाङ्खायन का इंगलिश अनुवाद—अनुवादक A. B. *Keith* Howard Oriental *Series* vol 25 1920

(७) कौषीतकि ब्राह्मण-सम्पादक B. Lindner *gena* 1887

(८) शाङ्खायन ब्राह्मण—सम्पादक गुलाबशंकर जैशंकर, आनन्द आश्रम संस्कृत ग्रन्थावली पूना १९११

(ग) शिक्षा:—

(१) ऋग्वेद प्रातिशाख्य, जर्मन अनुवाद सहित, सम्पादक Max Muller, Liepzig 1856-69

(२) शिक्षा संग्रह—बनारस संस्कृत सेरीज।

नोट:—इस सूची के लब्ध ग्रन्थ —मोतीलाल बनारसीदास सैदमिट्ठा लाहौर के यहाँ से—अथवा-मेहरचंद लछमणदास Publishers & Book *sellers* लाहौर से उपलब्ध हो सकते हैं—

(३) शौनक प्रति शाख्य–चौखम्बा संस्कृत सेरीज बनारस ६)

द) कल्प—

(१) श्रौत सूत्र—

(१) आश्वलायन श्रौत सुत्र Bibli Indica कलकत्ता।

(२) ,, Harward Oriental Series vol.25

(३) शाङ्ख्यायन श्रौत सूत्र सम्पादक A Hillebrandf Bibli Indica 1888.

(४) ,, ,, ,, Kieth Journal of the Royal Asiatic Society 1907 P.n.40

(५) ,, ,, ,, Harward Oriental Series vol. 25. pp. 50 f.

(२) गृह्यसूत्र—

(१) आश्वलायन गृह्यसूत्र सटीक, सम्पादक-गार्ग्यनारायण Bibli India 1869.

(२) आश्वलायन गृह्यसूत्र हरदत्ताचार्य कृत टीका सहित, सम्पादक गणपति शास्त्री त्रिवेन्डम संस्कृत सेरीज नं ७८-१९२३

(३) आश्वलायन गृह्यसूत्र जर्मन अनुवाद सहित-अनुवादक— A. B. Steizler, Indisdu Hausuagelu Germany 1965-8

(४) आश्वलायन गृह्यसूत्र का इंगलिश अनुवाद-अनुवादक— H. Oldenberg, Sacred Boks of the east Vol. 29.

(५) शाङ्खायन गृह्यसूत्र संस्कृत और जर्मन By. H.olden-

berg Indische Studien, herausgegeben von A. Weber
(६) इंगलिश अनुवाद (Sacred Books of the east) Vol. 29.
(७) कौषीतकि गृह्यसूत्र—सम्पादक रत्नगोपाल भट्ट बनारस संस्कृत सेरीज १६०८ ।
(८) आश्वलायन सूत्र प्रयोग टीका मंजनाचार्य भट्ट कृत चौखम्बा संस्कृत सेरीज बनारस ।
(९) शाख्यायन गृह्यसंग्रह—वासुदेव कृत

(३)–परिशिष्ट
(१) चरण व्यूह सभाष्य शौनकीय परिशिष्ट ।

(ङ) व्याकरण—पाणिनीय स्वर वैदिक प्रक्रिया ।

(च) निरुक्त.
(१) निरुक्त भाष्य दोनों भाग गुरुकुल कांगड़ी
(२) निघण्टु

(छ) छन्द पिङ्गल छन्द सूत्र ।

(ज) ज्योतिष—लगध की

(झ) अनुक्रमणिका—
(१) सर्वानुक्रमणिका कात्यायनकृत
(२) आर्षानुक्रमणिका शौनक कृत
(३) छन्दोनुक्रमणिका ,,
(४) अनुवाकानुक्रमणिका ,,
(५) पादानुक्रमणिका ,,
(६) सूक्तानुक्रमणिका ,,
(७) देवतानुक्रमणिका (अनुपलब्ध)
(८) ऋग्विधान शौनक कृत.

यजुर्वेद.

क—संहिताएँ तथा भाष्य

१—काठक संहिता Edited by L. V. Schroeder, Leipzig 1900-1910

२— ,, text & its inter-protation S. Keith, Journal of the Royal Asiatic Society 1910—18

३— ,, by Caland L. D. M. G. 72,1918

४—कपिष्ठल कठ संहिता—अप्रकाशित see L. V. Schroeder W. Z. K. M. L. 362

५—मैत्रायणी संहिता संपादक L. V. Schroeder Leipizig 1881-86

६—तैत्तरीय या आपस्तम्ब संहिता (रोमन अक्षर) by A Weber, ind Stud. Vlos 11 & 12

७— ,, सायण भाष्य सहित Bibl. Ind. 1860-1899

८— ,, ,, आनंद आश्रम पूना नं. ४२

९— ,, इंगलिश अनुवाद A. B. Keith, Harward. Oriental Series Vol. 18, 19, 1914

शुक्र यजुर्वेद—

१०—वाजसनेय संहिता महीधर भाष्य सहित A. B. Keith, Birlin, London 1852

११— ,, इंगलिश अनुवाद Griffith बनारस 1899

१२— ,, महीधर भाष्य सहित Weber London Birlin 1852

१३— ,, उव्वट महीधर भाष्य (निर्णयसागर प्रेस)

१४—तैत्तिरीय संहिता भट्ट भास्कर मिश्र का अप्रकाशित भाष्य

१५—शुक्ल यजुर्वेद संहिता पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत भाष्य सहित

१६—कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता

१७—यजुर्वेद भाष्य ऋषि दयानन्द कृत अजमेर

(ख) ब्राह्मण —

१—तैत्तिरीय ब्राह्मण, सायणभाष्य सहिता संपादक राजेन्द्रलाल मिश्र Asiatic Society of Bengal कलकत्ता

२—तैत्तिरीय ब्राह्मण सायण भाष्य सहित। सम्पादक नारायण शास्त्री। भाग १—३। आनन्दाश्रम पूना, सन् १८९८

३—तैत्तिरीय ब्राह्मण भट्ट भास्कर भाष्य सहित, सम्पादक महादेव शास्त्री तथा श्रीनिवासाचार्य। सन् १९०८-२१ मैसूर

४—शतपथ ब्राह्मण—(माध्यन्दिनीय) सम्पादक A. Weber Reprint, Leipzig 1924.

५—माध्यन्दिनीय शतपथ ब्राह्मण, अजमेर संवत् १९५९

६—शतपथ ब्राह्मण सायण भाष्य सहित, काण्ड १—३, ५-७-९ सम्पादक सत्यव्रत सामश्रमी, सन् १९०३–११ Asiatic society of Bengal, Calcutta vol I-VII

७—शतपथ का इंग्लिश अनुवाद, अनुवादक Julius Eggeling (Secret Book of the East vol. 12, 26, 41 43, & 44)

८—काण्वीय शतपथ ब्राह्मण (लाहौर में छप रहा है)
डी० ए० वी० कालेज

(ग) शिक्षा—

१—तैत्तिरीय प्रातिशाख्य सूत्र इंगलिश अनुवाद सहित—
Journal of the American Oriental society
vol 1 New Havan 1871

२—वाजसनेय प्रातिशाख्य सूत्र-सम्पादक पी० वी० पाठक
बनारस १८८३–८८०

३— ,, वेबरकृत जर्मन अनुवाद सहित Ind Stud. 4. 65
160, 177-33

४—प्रतिज्ञासूत्र–सम्पादक Weber A. P. A. 17.69

५—कात्यायन शुक्ल यजुः प्रातिशाख्य भाष्य सहित

(घ) कल्प —

१—श्रौत सूत्र—

१—कात्यायन श्रौत्र और शुल्च सूत्र व्याख्याचार्य कृत भाष्य
सहित। संपादक–मदन मोहन पाठक। विद्याविलास प्रेस-काशी।

(कृष्ण यजुर्वेद के श्रौतसूत्र)

२–कात्यायन श्रौत सूत्र सम्पादक A. weber

३–कात्यायन श्रौत सूत्र सभाष्य विद्याविलास प्रेस काशी।

४–बौधायन श्रौत सूत्र-सम्पादक W. Caland Bibli. ind.
1904-26

५–आपस्तम्ब श्रौत सूत्र सम्पादक R. gorbe Bibl. ind.
1882–1903

६–हिरण्यकेशीय श्रौत सूत्र सटीक, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली पूना
७–मानव श्रौत सूत्र Books 1–5 Edited by F. knauer St. Pitersburg 1900
८–मानव श्रौत सूत्र का चयन by J. M van Gelder Leyden 1921

२—गृह्यसूत्र

(शुक्ल यजुर्वेद)

१–पारस्कर गृह्यसूत्र कात्यायन सूत्रीय श्रातु शौच, विद्याविलास प्रेस काशी
२–पारस्कर गृह्यसूत्र हरिहर भाष्य सहित । लक्ष्मी वेंकटेश्वर बम्बई १८६०
३–पारस्कर गृह्यसूत्र–सम्पादक लधाराम शर्मा जर्मन अनुवाद सहित-अनुवादक A F Steynet Indische. Havregeln A. K M VI 2 & 4 1876-8 (पारस्कर गृ॰सू॰ भाष्य चतुष्टय सहित गुजराती प्रेस बम्बई)
४—इंग्लिश अनुवाद by H. oldenbery S. B. E Vol 29

(कृष्ण यजुर्वेद)—

५—आपस्तम्बीय गृह्यसूत्र सम्पादक–M. Winternity Vienna 1887
६—अनुवाद आपस्तम्ब परिभाषा सूत्र सहित S. B. E. Vol 30
७—हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र सम्पादक J. Kirste vienna 1889
८—इंग्लिश अनुवाद S. B. E. Vol 30

९—बौधायन गृह्यसूत्र, सम्पादक-श्रीनिवासाचार्य मैसूर १६०४ Bibilothica Sanskrita, No 32

१०—भारद्वाज गृह्यसूत्र-सम्पादक Hewiette J. W. Salomons Leyden 1913

११—मानव गृह्यसूत्र-सम्पादक-F. Knauer, St, Petersburg 1897

१२—काठक गृह्यसूत्र—सम्पादक W. Caland D. A. V. College Lahore

१३—वैखानस गृह्यसूत्र—Leipzig 1896

१४—वाराह गृह्यसूत्र-संपादक R शाम शास्त्री गायकवाड़—Oriental series No 18 Baroda 1921

(३) कल्प-धर्मसूत्र—

१—आपस्तम्ब धर्मसूत्र

२—वौधायन धर्मसूत्र

३—वशिष्ठ धर्मसूत्र

४—गौतम धर्मसूत्र

५—वैखानस धर्मसूत्र (Leipzig 1896)

६—हिरण्यक धर्मसूत्र

(४) कल्प-शुल्वसूत्र (Sculpture)

१—आपस्तम्बीय शुल्वसूत्र जर्मन अनुवाद सहित by Albert Burk Zoitschriblider Deutschen morgen Tandischan Gesellschft Z. D. M. S. 12. 1918

२—वौधायन शुल्व सूत्र इंग्लिश अनुवाद सहित G. Thibant "पंडित" Vol IX

३—कात्यायन शुल्व सूत्र (काशी से श्रौतसूत्र के साथ साथ छपा)
४—हिरण्यकेशीय शुल्वसूत्र।

(५) कल्प–श्राद्ध कल्प—

१—मानव श्राद्ध कल्प, सम्पादक W. Caland, Altindischer Ahnencult pp. 228 ff
२—शौनकीय श्राद्ध कल्प its pp 240 ff
३—पिप्पलाद „ के कुछ अंश। its pp 243 ff
४—कात्यायन „ its pp. 245
५—गौतम „ S caland in Bijdragen tot detoal Landen volkenkunde vonved, Iudie, 6c Volg deel I 1894

(६) कल्प–पितृमेधसूत्र

	संपादकः—
१—बौधायन पितृ मेधसूत्र	W.caland A K M X 3. 1896
२—हिरण्य केशीय „	
३—गौतम „	

(७) कल्प–परिशिष्ट

१—कर्म प्रदीप दोनों भाग जर्मन अनुवाद सहित Q. S 1889 1900

(ङ) अनुक्रमणि—

१—कात्यायन शुक्ल यजु. सर्वानुक्रम सूत्र सभाष्य काशी
२—निगम परिशिष्ट
३—प्रवराध्याय
४—यजुर्वेदीय चरण व्यूह
५—कृष्ण यजुर्वेदीय आत्रेयानुक्रमणि
६— „ „ चारायणीयानुकमणि।

सामवेद

(१) राणायनीय संहिता, सम्पादक और अनुवादक
Stencuson london 1842

(२) कौथुमस संहिता, जर्मन अनुवाद सहित by The. Benfey, Lipzig 1848

(३) ,, सायण संहिता by सत्यव्रत सामाश्रमी
Bible Ind 1871.

(४) जैमिनीय संहिता by W. Caland (Indische Forschungen Breslaw 1907

(५) सामवेद संहिता इङ्गलिश अनुवादक Griffith बनारस १८६३,

(६) तुलसीरामस्वामी कृत—

(ख) सामवेदीय ब्राह्मण

(१) ताण्ड्य महाब्राम्हण सायण भाष्य सहित, सम्पादक-आनंदचंद्र वेदान्त वागीश, Asiatic Society of Bengal Calcutta 1870.

(२) दैवत ब्राम्हण तथा षड्विंश ब्राम्हण सायण भाष्य सहित, सम्पादक-जीवानन्द विद्यासागर कलकत्ता १८८१

(३) षडविंश ब्राम्हण विज्ञापन भाष्य सहित सम्पादक H. F. ealsingh Leyden 1908

(४) षडविंश ब्राम्हण सायण भाष्य सहित (प्रथम प्रपाठक,) सम्पादक Kurt Klemn, Guteslah 1898

(५) मंत्र ब्राम्हण, सम्पादक। सत्यव्रत सामश्रमी कलकत्ता सम्वत १९२७

(६) मंत्र ब्राह्मण (प्रथम प्रपाठक) सम्पादक
Heinrich Stonner Halle 1901
(७) संहितोपनिषद् ब्राह्मण भाष्य सहित सम्पादक A. C. Burnell मंगलौर १८७७
(८) आर्षेय ब्राह्मण सम्पादक A. C. Burnell मंगलौर १८७६
(९) वंश ब्राह्मण सायण भाष्य सहित; सम्पादक—सत्यव्रत सामश्रमी कलकत्ता संवत १६४६
(१०) सामविधान ब्राह्मण, सायण भाष्य सहित संपादक सत्यव्रत सामश्रमी कलकत्ता संवत १६५१
(११) सामविधान ब्राह्मण, सायण भाष्य सहित, संपादक A C Burnell London 1873
(१२) जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण, संपादक Hans Oertel देवनागरी संस्करण लाहौर १६२१
(१३) जैमिनीय आर्षेय ब्राह्मण, संपादक A. C Burnell मंगलौर संवत १८७८
(१४) जैमिनीय ब्राह्मण अथवा तलवकार ब्राह्मण—(इसका संस्करण डी ए. वी. कॉलेज लाहौर से पं० वेद व्यास एम० ए० प्रकाशित कर रहे हैं)

(ग) शिक्षा—

[१] सामप्रतिशाख्य, सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा ['उषा' कार्यालय कलकत्ता] १८६० में संपादित।
[२] पुष्पसूत्र अजातशत्रु कृत टीका सहित, संपादक लक्ष्मण शास्त्री काशी।
[३] पुष्पसूत्र जर्मन अनुवाद सहित संपादक R Simon A Bay A 1909 pp 48–780

[४] पञ्चविध सूत्र जर्मन अनुवाद सहित by R. Simon Bseslau 1903 (Indische Foorschwgu 5)

घ) कल्प—

श्रौतसूत्र—

[१] मशक कल्पसूत्र, संपादक W. Caland; Abhand lungen fur die Kunde des morgendondes herausg, Vondor Dentochen morgen-londischen Gesellschaft XII 3 Lipzig 1908

[२] लाट्यायन श्रौतसूत्र Bibilothica Indica कलकत्ता

[३] द्राह्यायण श्रौतसूत्र संपादक J. N. Reuter, Part 1 London 1908

[४] जैमिनीय श्रौतसूत्र [अग्निष्टोमाध्याय] Leyden 1906

२ गृह्यसूत्र—

[१] गोभिल गृह्यसूत्र सटीक संपादक चंद्रकांत तर्कालंकार द्वितीय संस्करण Bibli. Ind. कलकत्ता 1906-1908

[२] गोभिल गृह्यसूत्र जर्मन अनुवाद सहित by F. Kuaner Dorpat 1884-6

[३] इंगलिश अनुवाद Secret Books of the East 13 / 29

[४] खदिर गृह्यसूत्र इङ्गलिश अनुवाद सहित S. B. E 13/29

[५] जैमिनीय गृह्यसूत्र संपादक और अनुवादक W. Coland लाहौर १९२२ पंजाब संस्कृत सेरीज नं० २

३ कल्प—परिशिष्ट—

[१] गोभिल पुत्र गृह्यसंग्रह परिशिष्ट by M. Bloomfino Z. D. M. Q vol. 35

[२] गोभिल पुत्र गृह्य संग्रह परिशिष्ट by चंद्रकांत तर्कालंकार Bibli Ind. 1910

[३] गोभिलीय परिशिष्ट [संध्यायाध्याय, स्नानसूत्र, श्राद्धकल्प आदि] Bibli Indi. 1909

(ङ) अनुक्रमणिका—

[१] सामवेदीय आर्षानुक्रमणिका

[२] सामवेदीय देवतानुक्रमणिका

अथर्ववेद

[१] अथर्व संहिता । सायण भाष्य in 4 Vol. Bombay

[२] इंगलिश अनुवाद by Griffith (Benares 1895-9)

[३] „ „ by W P. Whitney edited by C. R Lamman (H. O S. Vol 7 & 8 Cambridge 1905)

[३] क्षेमकरणदास कृत भाष्य

(ख) अथर्व वेदीय ब्राम्हण—

[१] गोपथ ब्राम्हण, संपादक हरचंद्र विद्याभूषण कलकत्ता १८७०

[२] गोपथ ब्राम्हण, संपादक Dr Dieuke Guastra Lyden 1919

(ग) शिक्षा—

[१] अथर्ववेद प्रातिशाख्य, प्रथम भाग संपादक विश्वबंधु विद्यार्थी शास्त्री, पंजाब युनिवर्सिटी ।

(घ) कल्प—

१ श्रौतसूत्र—

[१] वैतान श्रौतसूत्र, जर्मन अनुवाद सहित, अनुवादक R. Garbe London & Startasburg 1878

२ गृह्यसूत्र—

[१] कौशिक गृह्यसूत्र, संपादक M. Bloom Field New Hauen 1890

३ परिशिष्ट—

[१] अथर्ववेद परिशिष्ट संपादक G. M. Bolling & J. ron Negelien Lipzig 1909-10

[२] अथर्ववेद शान्तिकल्प Translations of the American Philological Association Vols 35. 1904. 77 ff

[३] अथर्ववेद शान्ति-कल्प Journal of the American Oriental Society 33 1913-265 ff

[४] अथर्व प्रायश्चित्तानि-संपादक J.V. Negeliun New Haven 1915

(ङ) अनुक्रमणिका—

[१] अथर्ववेदीय चरणव्यूह

देश और विदेश में विद्वानों के वेदों के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत रहे हैं। एक मत ब्रम्ह वादी है। इस मत का अभिप्राय यह है कि वेद परमात्माने सृष्टि के आदि में चार समाधिस्थ ऋषियों के हृदयों में प्रकट किये। यह सब से पुराना मत है। इसकी पुष्टि ब्राम्हण ग्रंथ, उपनिषद और धर्मसूत्रों ने की है। सायण और ऋषि दयानंद भी इसी मत के हैं। ऋग्वेद १० । ९० । ९, यजु० ३१ । ७, और ३४ । ५,

अथर्व १० । ४ । ७ । २०, शतपथ १४ । ५ । ४ । १०, मनु १ । १२, १२ । ९४ से १२ । १०० तक. निरु० अ० २, आदि स्थलों के प्रवचनों से उपर्युक्त पक्ष का समर्थन किया जाता है। दूसरा मत दार्शनिक है। इस मत में वेद अनादि और नित्य नहीं माने जाते, उनकी उत्पत्ति हुई है ऐसा माना जाता है। इसकी पुष्टि में सांख्य ५ । ४५ से ५१ तक, योग १ । २४ [व्यास भाष्य और वाचस्पति मिश्र का तर्क] न्याय २ । ६७, वैशेषिक १ । १ । ३, वेदान्त १ । ३ । मीमांसा १, १, १८, उपस्थित किये जाते है। तीसरा मत निरुक्त का है। वह लग-भग प्रथम मत से सहमत है। चौथा कौत्स-मत है जो कहता है—वेद निरर्थक है, उनके अर्थ स्वतंत्रता से हो ही नहीं सकते। निरुक्तकार ने इस मत का विरोध किया है।

पाँचवाँ याज्ञिक मत है। इसका मंतव्य यह है कि वेद किसी एक युग में किन्हीं खास चार ऋषियों के हृदयों में नहीं प्रकट हुए, किंतु जिस मंत्र का जो ऋषि है उसी के हृदय में प्रकट हुए है और भविष्य में भी होते रहेंगे। अभी वेद संपूर्ण नहीं हो गये। इस मत वाले वेद के देवताओं को चैतन्य मानते हैं। शंकरस्वामी इसी मत के पुरुप हैं। ऋग्वेद का १० । ७१ । ११ का मंत्र तथा ऋ० १० । ९० । १६ का मंत्र इस मत की पुष्टि में दिया जाता है। इसी मत की पुष्टि ब्राम्हण ग्रंथ करते हैं, परंतु निरुक्तकार इनका विरोध करता है।

छठा मत ऐतिहासिक है। यह वेद में ईश्वरीय ज्ञान न मान कर उनमें आर्य सभ्यता का प्राचीन इतिहास मानता है। अपनी पुष्टि में यह पक्ष ऋग्वेद के १ । ३२ । ०, १ । ३२ । १, ३ । ३३ । ५, ३ । ३३ । ६, १० । ९८ । ५, १० । ९८ । ६, ७ । ४७, ७ । ४ । ८, १ । १०५ । ९, १ । १०४ । १, १ । १२६ । ७, ३ । ५३ । १४ । ४ । ३० । १८ आदि मंत्र उपस्थित करता है।

सातवाँ मत पाश्चात्य विद्वानों का है। इस मत वाले वेदों से आर्यों के आदि और उद्गम स्थानों की खोज करते है। इस मत वाले अपनी

गवेषणा में-गाथा शास्त्र, व्युत्पत्ति शास्त्र, पुरातत्व शास्त्र, मस्तिष्क विज्ञान, मानवीय शास्त्र, भूस्तर शास्त्र तथा प्राण्यवशेष शास्त्र की सहायता लेते हैं। तिलक पक्ष भी इसी मत का है।

दर्शन शास्त्र प्रबल बुद्धिगम्य शास्त्र है, पर वेदों के विषय में उसका वर्णन अस्पष्ट ही है और विशेषता यह है कि सब दर्शनकारों का इस विषय में मत भी एक नहीं। वेदांत सूत्रकार, उनके भाष्यकार व्यास और शंकर का कथन है 'शब्द जिस वस्तु जाति के वाचक हैं वह जाति नित्य है। नैयायिक वेदों को स्वतः प्रमाण कहते हैं। वैशेषिक ईश्वर कृत कहते हैं, सांख्यकार आदि पुरुष से वेद की उत्पत्ति मानते हैं और मीमांसाकार वेदार्थ को नित्य मानते हैं। ये सभी मत ब्रह्मवादी मत के लगभग अनुकूल हैं।

यदि तिलकमत पर ध्यान दिया जाय—जो कि अबतक प्रकाशित सभी मतों की अपेक्षा प्रमाणयुक्त है-तो भू-गर्भ-शास्त्र वेत्ताओं का यह कथन कि उत्तरीय ध्रुव में हिमागम काल को १०। १२ हजार वर्ष हो गये तिलक मत की कालकल्पना से मिलान खा जाता है, परन्तु वेदों के समर्थक विद्वान पं० सत्यव्रत सामश्रमी ने तिलक मत का गहरा विरोध किया है। हमारी सम्मति से इस विरोध में बल नहीं है, न विवेचना है और तर्क भी स्थूल ही है।

तिलक ने अपने ओरायन नामक ग्रंथ में अंकगणित और ज्योतिष के सिद्धांतों के आधार पर अनैतिहासिक वैदिक काल के समय का इस प्रकार अनुमान किया है:—

वेदकाल—मृगशीर्षकाल	ईस्वी	सन	से पूर्व	१०,००० से ८०००	वर्ष तक
,,	,,	,,	,,	,,	६००० से २४००	,,
,,	कृत्तिकाकाल	,,	,,	,,	२५०० से १४००	,,
तैतिरीय संहिता (ब्राह्मण)		,,	,,	,,	२४०० से १४००	,,
,,	,, (अरण्यक)	,,	,,	,,	२००० से १४००	,,

ज्ञानपर उपनिषद्	,,	,,	,,	१६०० से १३००	,,
अर्वाचीन ,,	,,	,,	,,	७०० से ६००	,,

प्रसिद्ध ऐतिहासिक सर रमेशचन्द्र दत्त वेदकाल को ईस्वी सन से २००० वर्ष से १४०० वर्ष पूर्व मानते हैं। इनका ख्याल है कि ऋग्वेद का निर्माण तब हुआ है जब आर्य लोग सिंध की घाटी में रहते थे। वेद भाष्यकार सायण भी ऋग्वेद को सर्व-प्राचीन मानते हैं। पाश्चात्य विद्वानों का यह मत है कि ऋग्वेद का अधिकांश भाग उस समय का बना हुआ है जब कि आर्य लोग सिंधु के तीर पर बसते थे। शेष अंश की रचना पीछे से क्रमशः हुई है। विश्वामित्र के पुत्र मधुच्छन्द एवं दशम मण्डल के ऋषि वृन्द, ऋक्—प्रकाशक ऋषियों के मध्य आधुनिक मालूम पड़ते हैं। व्याकरणाचार्य पाणिनी, मसीह से पूर्व चतुर्थ शताब्दी में हुए थे यह बात अब निर्विवाद हो गयी है। यह युग सूत्रकाल का मध्यवर्ती युग था। ऋग्वेद की विशेष शाखाओं की शौनक द्वारा की गयी रचना यास्क के निरुक्त के बाद की है क्योंकि शौनक के 'बृहद्देवता' में यास्क के मत का उल्लेख है। इसका स्पष्ट अर्थ यह होता है कि यास्क, पाणिनी से लगभग १५० वर्ष बाद हुआ। सूत्र ग्रन्थों का आरम्भकाल बुद्ध के प्रथम का है क्यों कि जैन तथा बौद्धदर्शन-शास्त्र हिंदू दर्शन-शास्त्र के प्रतिवाद मूलक हैं। तथा उपनिषदों के ही आधार पर उनकी रचना हुई है। उपनिषद् तथा ब्राम्हण का परिशिष्ट आरण्यक का क्रमिक विकास है। दो चार सौ वर्षों में विराट् साहित्य का ऐसा विकास नहीं हो सकता।

मैक्समूलर ब्राम्हणों की रचनाकाल ईसा से ८०० से ६०० वर्ष पूर्व और वेद विन्यास काल १००० से २००० वर्ष पूर्व मानते हैं परन्तु यह काल केवल निरर्थक युक्तिवाद पर निर्भर है। जर्मन विद्वान याकोबी और महात्मा तिलक के ज्योतिष सम्बन्धी अनुसंधान के अ—

तो पाश्चात्य विद्वानों ने भी मैक्समूलर के मत का सम्मान करना त्याग दिया है।

ज्योतिष के मत से काल का निरूपण होना एक उचित बात है। पृथ्वी जितनी देर में सूर्य की परिक्रमा करती है वह एक दिन—तथा चन्द्रमा जितनी देर में पृथ्वी की परिक्रमा करता है वह मास माना जाता है। परंतु ज्योतिष की गंभीर गणना यह कहती है कि दो अमावस्याओं के मध्यवर्ती समय से भी कम समय में चंद्रमा पृथ्वी प्रदक्षिणा कर लेता है। प्रथमोक्त समय ३० दिन से कम और शेषोक्त २७ दिन से कम होता था। इसलिये प्राचीन ज्योतिर्विदों ने नक्षत्र-चक्र को २७ विभागों में विभक्त कर एक भाग का नाम नक्षत्र रखा। आजकल नक्षत्रों की गणना अश्विनी से आरम्भ की जाती है। एवं जिस बिन्दु में नक्षत्र विषुवत् रेखा से मिल कर उत्तराभिमुख होता है वही बिंदु अश्विनी नक्षत्र का आदि बिंदु माना जाता है। नक्षत्रों के नाम हैं—अश्विनी, भरिणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्व फाल्गुनी, उत्तर फाल्गुनी, हस्ता, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्व भाद्रपद, उत्तर भाद्रपद और रेवती। इस तरह नक्षत्र चक्र के प्रत्येक भाग का नाम नक्षत्र है। तारागण सर्वदा ज्योतिर्मय हैं; परंतु कुछ ज्योतिष्क हैं वे अंधकार में ग्रस्त रहते हैं और वे ही ग्रह कहाते हैं। उनके नाम—सूर्य, चंद्र, बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति और शनि हैं। प्राचीन विद्वानों ने सूर्य और चंद्र को ही ग्रह माना है। उस समय प्रत्येक ग्रह का नक्षत्र चक्र में एक बार भ्रमण कर जाने का काल निर्दिष्ट था। आकाश के सब से ऊर्ध्व प्रदेश में एक निश्चल तारा भी देख पड़ता है। यह न तो अन्य ग्रहों की तरह नक्षत्रचक्र ही में घूमता है न नक्षत्रों की तरह पृथ्वी के चारों ओर घूमता है। यही 'ध्रुव' है। इसी के नीचे और ग्रह समूहों के ऊपर सप्तर्षि मण्डल नाम के सात उज्ज्वल तारे

दिखाई देते हैं, ये सातों नक्षत्रचक्र से पृथक है। नक्षत्रचक्र में इनकी कुछ भी गति नहीं है। परन्तु सप्तर्षि मण्डल के जो दो तारे ध्रुव के साथ सम सूत्र में अवस्थित हैं वे जिस नक्षत्र के साथ रहते हैं सप्तर्षि मण्डल भी उन्हीं के साथ रहता है। कुरुक्षेत्र के युद्ध-काल में सप्तर्षि मण्डल मघा नक्षत्र में स्थित देखा गया था आज भी सप्तर्षि मण्डल मघा नक्षत्र में है।

सप्तर्षि-मण्डल में गति न रहते हुए भी प्राचीन लोगों ने उसकी गति की कल्पना करके उसके द्वारा समय निर्णय करने का उपाय निकाला था। उनका अनुमान था कि सप्तर्षि-मंडल एक एक नक्षत्र में सौ-सौ वर्ष रहता है।

ऋग्वेद संहिता में विषुवत् रेखा में मृगशिरा नक्षत्र की अवस्थिति का उल्लेख पाया जाता है। ब्राह्मण युग में भी इसी रेखा में कृत्तिका नक्षत्र की अवस्थिति का परिचय मिलता है। महात्मा तिलक का भी यही मत है और जर्मन विद्वान याकोबी इसके समर्थक हैं कि ईसा से २५०० वर्ष पूर्व कृत्तिका नक्षत्र में एवं ४५०० वर्ष पूर्व मृगशिरा में महाविश्व संक्रान्ति संघटित हुई थी।

स्व० तिलक ने इस ज्योतिष विज्ञान के आधार पर वेदों के विषय में जो गवेषणा की है उसके दो परिणाम स्पष्ट हैं। एक यह कि वेदों का निर्माणकाल ईसा से ८ हजार से १० हजार वर्ष पूर्व तक का है। दूसरा वेदों का निर्माण उत्तरीय ध्रुव अर्थात् सुमेरु पर हुआ है। ऋग्वेद का १।२४।१० का मंत्र स्व० तिलक का प्रबल अवलम्ब है। इस मंत्र का यह अर्थ है—

"ये जो सप्तर्षि नक्षत्र सिर के ऊपर स्थित हैं वे रात्रि में दिखते हैं, और दिन में अदृश्य हो जाते हैं। चन्द्रमा भी रात ही में दिखता है, वे

वरुण के अक्षय कर्म हैं[१]।"

इस मंत्र में सिर के ऊपर स्थित सप्तर्षियों का वर्णन है। वे सप्तर्षि केवल उत्तरीय ध्रुव में ही सिर के ठीक ऊपर दीख पड़ते हैं। इसी प्रकार का वर्णन ऋग्वेद की १० । ८९ की १८ ऋचाओं का जो सूर्य-स्तुत सूक्त है उसकी दूसरी ऋचा के प्रथमार्द्ध में भी है[२]। दूसरी विचारणीय बात ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर दीर्घ उषा का वर्णन है, जैसा कि आगे विस्तार से देखेंगे। ऋग्वेद ७ । ७६ । ३ में देखिये—

"उषा को प्रकट हुए सूर्योदय तक अनेक दिवस व्यतीत हो गये। जैसे स्त्री प्रिय के चारों ओर घूमती है उसी तरह उषा घूमती है[३]।"

यह चारों ओर घूमती उषा कैसी? इसी प्रकार के प्रमाण ऋग्वेद ८ । ४१ । ३, १ । ११३ । १०, ११ । १२ । १३, १ । १७४ । ७, २ । १५ । ६, २ । २८ । ६, में मिलते हैं जिन में उषा को दीर्घ काल तक स्थित बताया गया है। इन मंत्रों में उषा का बहुवचन में वर्णन किया गया है। अथर्व वेद ७ । २२ । २ और तैत्तरीय संहिता का० ४ प्र० ३ अ० ११ में ३० भागों में घूमती हुई उषा का वर्णन है। ये उषाएँ प्रतिदिन होनेवाली उषा कदापि नहीं बल्कि उत्तरीय ध्रुव में होनेवाली दो मास तक की उषा है जिसे अवश्य ही इन सूक्तों के ऋषियों ने देखा था। इसके सिवा ऐतरेय ब्राह्मण २ । २ । ५ में लिखा है कि अग्निष्टोम आदि यज्ञों में प्रातःकाल पक्षियों के बोलने के पूर्व तक ही प्रातरनुवाक् की सहस्त्र ऋचाओं का पाठ करे। भला सहस्र ऋचाएँ १ या १॥ घंटे

१ अमीय ऋक्षा निहितास उच्चाः नक्तं ददृश्रे कुहचिद्दिवेयुः।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्त मेति।

२ ससूर्यः पर्युरुवरांस्येन्द्रोववृत्याद्रथ्येव चक्रा।

३ तानीदहानि बहुलान्यासन्या प्राचीन मुदिता सूर्यस्य। यतः परिजार इवाचरन्त्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव।

सप्तर्षिमंडल पूर्वापाद नक्षत्र में था। इस तरह परीक्षित के जन्म से महापद्म के अभिषेक को १०१५ वर्ष होते हैं। परीक्षित का जन्मकाल ही कलि का प्रारम्भ काल है। इस प्रकार ईसा से १५०० वर्ष पूर्व कलिकाल का प्रारम्भ हुआ समझना चाहिये।

यह बात एक प्रकार से निर्विवाद है कि वशिष्ठ और विश्वामित्र सम कालीन थे। ये दोनों ही पंजाब के सूर्यवंशी राजा सुदास के समकालीन थे। सुदास के यहाँ इनने यज्ञ कराया था। वशिष्ठ के पुत्र शक्ति—शक्ति के पाराशर—पाराशर के व्यास—व्यास के शुकदेव थे। व्यास ही के शिष्य वैशम्पायन थे। गाधिपुत्र विश्वामित्र—विश्वामित्र के पुत्र मधुच्छन्द थे। इस हिसाब से महाभारत के जीवित पात्र व्यास, वैदिक ऋषि वशिष्ठ की चौथी पाँचवी पीढ़ी के व्यक्ति साबित होते हैं। अब अगर महाभारत के काल पर दृष्टि दी जाय तो वह निश्चय ही पाणिनी के व्याकरण से पूर्व का अवश्य है। पाणिनी ने छठे अध्याय मे महाभारत के पात्रों का उल्लेख किया है। आश्वलायन गृह्य सूत्रों में भी महाभारत का उल्लेख है। तब महाभारत सूत्रयुग के प्रथम की वस्तु तो है ही फिर चाहे उसका कुछ ही अंश उस समय का हो। सूत्र युग के लगभग का ही दर्शनकाल है। तब यदि महाभारत को भी दर्शनकाल का ग्रन्थ कहें तो अनुचित न होगा। इससे प्रथम का युग उपनिषद युग था और उससे पूर्व ब्राह्मण युग और उसके पूर्व का युग वैदिक युग है। उपनिषद और ब्राह्मण युग के बीच मे कोई सीमा निर्दिष्ट करना मुश्किल है। हमारा तो विश्वास है कि ब्राह्मण युग और उपनिषद युग समकालीन है। ब्राह्मण, कर्मकाण्डियों का अर्थात् ब्राह्मणों का साहित्य है तथा उपनिषद् क्षत्रियों का—ज्ञानकाण्डियों का साहित्य है। ऋग्वेद के दशम मंडल का और अथर्ववेद के रचनाकाल का यही युग है। यही समय था जब क्षत्रियों और आर्यों में प्राधान्य के लिए बड़ी भारी प्रतद्वंदिता चली थी। भृगु का चन्द्र वंशी राजाओं से विद्रोह, तथा क्षत्रियों का

ब्राम्हणों से ब्रह्मविद्या को गोपनीय रखना इसके प्रमाण हैं जिनका वर्णन प्रसंगवश आगे विस्तार पूर्वक किया गया है।

प्रो० अविनाशचन्द्र दास-लेक्चरर कलकत्ता यूनिवर्सिटी-अपनी ऋग्वेदिक इण्डिया, में जो भाव प्रकट करते हैं उसका सारांश यह है—

" प्राकृतिक आकस्मिक परिणाम एवं भोजन, निवास, तथा ऋतु सम्बन्धी परिस्थितियों से विवश हो 'आर्य' स्थान परिवर्तन करते तथा घूमते रहे। हिमयुग के महान परिवर्तनों के कारण वनस्पति और पशुओं को भी स्थानान्तरित होना पड़ा है। भौतिक और भौगोलिक परिस्थितियों की स्थिति में निरन्तर परिवर्तन होने के कारण आर्यों के वास्तविक स्थान का निर्णय करना कठिन है। वह स्थान सप्तसिन्धु, उत्तरीय ध्रुव, उत्तरीय यूरोप, मध्य एशिया, मध्य अफ्रिका और कोई विलुप्त महाद्वीप भी हो सकता है। "

ऋग्वेद के कुछ मंत्रों से सप्तसिन्धु प्रदेश के जलस्थल विभाग का कुछ बोध होता है। भूगर्भ शास्त्र के सिद्धान्तों से सिद्ध होता है कि तृतीय युग में वर्तमान राजपूताना समुद्र था। साम्हर झील उसका अवशिष्ट अंश प्रतीत होता है और पंजाब के पूर्व में गंगा की समुद्र के समान विशाल झील थी। यह स्थान वर्तमान हरिद्वार के निकट कहीं होगा और इसे कम से कम ३-४ लाख वर्ष हुए होंगे। आर्यों ने उस प्राचीन काल में वहां अवश्य ही निवास किया है। ऋग्वेद २-२२-१३ का सूक्त इस बात की पुष्टि करता है कि ऋग्वेद के सूक्त 'पूर्वकाल में रचे हुए' 'मध्य-काल में बने हुए, और अनन्तर बने हुए हैं।

भूगर्भ से स्पष्ट है कि सप्त सिन्धु प्रदेश जो वास्तव में पंजाब था, एक समुद्र के द्वारा दक्षिण भारत से सर्वथा पृथक् था और यह समुद्र आधुनिक राजपूताना प्रदेश में था जो पूर्व में आसाम तक चला गया था और पश्चिम में सिन्धु नद के उस कोण तक था जहाँ उसकी सहायक

नदियां मिलती हैं। यही समुद्र वर्तमान टर्की के नीचे और उत्तर में उत्तरीय समुद्र तक पश्चिम में कृष्ण सागर तक फैला था, जिसके भाग आज कृष्ण सागर, कैस्पियन सागर, अरब सागर और बालकश झील हैं। टर्की के पूर्व में एक और एशियाटिक भूमध्य सागर था। ऋग्वेद इन चारों समुद्रों का ही वर्णन करता है, जो अतिशय प्राचीन बात है। उस समय दक्षिण पथ एक महाद्वीप था जो ब्रह्मदेश से अफरीका के किनारे तक, तथा दक्षिण में आस्ट्रेलिया तक फैला था। ऋग्वेद के बाद किसी प्रबल भूकम्प से वह प्रदेश समुद्र में डूब गया और वहाँ के उच्च प्रदेश, भारतीय द्वीप समूह, प्रशान्त सागर के द्वीप, आस्ट्रेलिया के द्वीप, तथा मडेगास्कर के द्वीप रह गये। उधर राजपूताना प्रदेश समुद्र से उभर आया। इसीसे पंजाब निवासियों के लिये दक्षिणापथ का मार्ग खुल गया। अगस्त्य ऋषि का दक्षिण दिशा जाने, समुद्र पीने तथा विन्ध्याचल को नीचे झुकाने की पुराण गाथा—इसी महत्व पूर्ण घटना से निर्माण हुई प्रतीत होती है। हर हालत में ऋग्वेद् काल में सप्तसिन्धु प्रदेश (पंजाब) केवल गान्धार देश को छोड़कर चारों ओर से समुद्र से घिरा हुआ था और तब गान्धार का सम्बन्ध पश्चिम एशिया और एशिया माइनर से था।

दक्षिण महाद्वीप के समुद्र में डूब जाने और समुद्र से राजपूताना के ऊपर उठ आने के समय में ही सम्भवतः वह महा जल-प्रलय हुआ है जिसका जिक्र शतपथ ब्राह्मण और बाइबिल में भी है और जिसे मनु का जल प्रलय या नूह का जल प्रलय कहा जाता है। अवश्य आर्यों को फिर उस समय उत्तरीय हिमालय प्रदेशों पर चढ़ना पड़ा होगा और हिमालय पर हिम वर्षा उसी महाजल की अपरिमित वाष्प से संचित हुई होगी और उसके बाद ही वहाँ मनुष्यों का रहना सम्भव न होने से धीरे धीरे लोग फिर उतरने लगे होंगे। यही काल आर्यों के पांचाल, कौशल, विदेह, और अंग प्रदेशों तक बढ़ आने का हो सकता है, पर वे बहुत धीरे धीरे बढ़े होंगे।

प्राचीन सप्तसिन्धु प्रदेश में सरस्वती बड़ी प्रबल नदी थी। उसमें बड़ी

बाढ़ें आती थीं। इस प्रदेश में चार मास वर्षा ऋतु रहती थी। वर्षा ऋतु को "चौमासा, या चातुर्मास, अब भी कहते हैं,। राजपूताना समुद्र लुप्त होने और गंगा की झील नष्ट होने से सप्तसिन्धु (पंजाब) गर्म देश हो गया और वर्षा भी कम हो गई। ऋग्वेद में वर्ष को पहले हिम, फिर हेमन्त तथा बाद में शरद कहा है उसका कदाचित यही अभिप्राय हो सकता है।

ऋग्वेद में, कीकट, प्रदेश का वर्णन है, यथा "इस अनार्य कीकट में गौएँ क्या खाएँगी"। यह कीकट देश कोई ऊसर होगा जो उत्तर से दक्षिण पूर्व की यात्रा करते हुए आर्यों को मिला होगा।

इस महान भौगोलिक परिवर्तन के बाद आर्यों ने लम्बी यात्राओं का साहस किया। कुछ भाग यूरुप के अत्यन्त पश्चिम में पहुँचा और कुछ ईरान में फिर से जा बसा, परन्तु मालूम होता है पूर्व की तथा दक्षिण की ओर वे देर में बढ़े। क्योंकि सम्भवतः समुद्र हट जाने पर भी बहुत काल तक भूमि, यात्रा और निवास के योग्य न रही हो।

ऋग्वेद 'पणी' नामक एक जाति का उल्लेख करता है जो जल-व्यापारी थी। यह अवश्य आर्यों में से निकली हुई ऋग्वेद के उत्तर काल की नवसंगठित जाति होगी। इस जाति के लोग बड़े कारीगर किन्तु पूरे लालची होते थे। व्याज बहुत लेते थे। ऋग्वेद के कुछ सूक्तों में इनके दुर्व्यवहार से तंग आकर इनसे युद्ध करने का वर्णन आया है। इन्हें लुटेरा समझा जाता था। आज कल जो ईरानी स्त्री पुरुष लाल रूमाल सिरसे लपेट कर चाकू आदि चीजें बेचते फिरा करते हैं संभवतः उसी पणी जाति के हों। कम से कम इनके आचार व्यवहार को देखकर ऋग्वेद की उस पणी जाति की स्मृति हरी आती है। युद्धों से तंग आकर ये लोग नाविक रूप से समुद्रों ही में रहने लगे थे। फिर राजपूताने की भूमि का उद्धार होने पर वे गुजरात के तटों पर तथा मालाबार के इधर उधर

बस गये प्रतीत होते हैं, क्योंकि जहाज के योग्य लकड़ी वहाँ मिल सकती थी। इन्हीं लोगों ने मेसोपोटामिया में उपनिवेश स्थापित किया और बेबोलियन साम्राज्य स्थापित किया। ये भूमध्य समुद्र के किनारे सीरिया भी पहुँचे। इसी जाति ने वास्तव में योरप का प्रारम्भिक इतिहास बनाया और मेसोपोटामिया, ईजिप्ट, फोनेशिया, उत्तर अफ्रीका, और स्वीडन में उपनिवेश बसाये।

उन दिनों मध्य एशिया जल में डूबा हुआ था, इस लिए एशिया माइनर से योरप जाने का एक मात्र मार्ग पोन्टस दास्परस की संयोग भूमि थी। इसी मार्ग से आर्यों ने वहाँ जाकर सेमिटिक जाति का निर्माण किया।

इस बात को स्वीकार करने के बहुत कारण हैं कि ईरानी लोग विशुद्ध आर्य हैं। आर्य सभ्यता के बड़े भारी चिन्ह ईरान में हैं। आर्य स्वर्गों के नाम वहाँ के नगरों को अभी तक दिए हुए हैं। वे आर्यों से सिर्फ एक विषय में विरुद्ध पड़े प्रतीत होते हैं, वह यज्ञों की प्रधानता है, जो ब्राह्मणों ने प्रचलित की थी और जिसमें बड़े बड़े आडम्बर किये जाते थे। ये प्राचीन पद्धति पर केवल गृह होमाग्नि को ही सुरक्षित रखना चाहते थे, जैसा कि अब तक रखते हैं। पहला दल जहाँ साम्राज्य स्थापना और युद्ध में बढ़ रहा था वहाँ यज्ञों में पशुवध और सोमपान का प्रचार भी कर रहा था। ये दोनों बातें इस दूसरे दल को पसन्द न पड़ी। धड़े बन्दी हुई। फिर मार पीट और रक्तपात हुए। ये लोग यज्ञ पक्ष वालों को घृणा पूर्वक 'सुर' शराब पीने वाले, कहने लगे और वे उन्हें व्यंग से 'असुर, कहने लगे। इन देवासुर संग्रामों का वर्णन पुराणों में बहुत है। अन्त में असुरों को अपना स्थान त्यागना पड़ा और उन्होंने आर्य-नम्बेजो में बड़े साम्राज्य की स्थापना की।

सन १६०७ में 'बोगजे' ग्राम में, जो एशिया माइनर के अन्त-

गत है कुछ मिट्टी के लेख पट्ट मिले थे। इन में से दो टिटोनिया के राजा सुविस्स हूमर के साथ मितानी उत्तर (मेसोपोटामिया) के राजा मितिउज्य के सन्धिपत्र थे। ये दोनों ही सन्धिपत्र मसीह से १४०० वर्ष पूर्व के हैं। इनमें दोनों देशों की तरफ से अपने अपने देवताओं से प्रार्थना की गयी है। मितानी के राजाने मित्र, वरुण, इन्द्र, नासत्द्र्य (अश्विनीकुमार) इन वैदिक देवताओं की प्रार्थना की है। यह इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि ईसा से १४०० वर्ष पूर्व मेसोपोटामियाँ वालों में वैदिक देवताओं का मान और ज्ञान था।

दक्षिण मिश्र के अन्तर्गत तेलेल अर्मना में कई एक पत्र मिले हैं जो पश्चिम एशिया के राजाओं द्वारा मिश्र के फेरा को लिखे गये थे। इन राजाओं का नाम आर्य था। इससे भी ज्ञात होता है कि मसीह से पूर्व १६। १४ वीं शताब्दी में उत्तर मेसोपोटामिया और सीरिया में वैदिक धर्म का आम प्रचार था। वैविलोनिया के पूर्वस्थ कसाईट जाति के देवता का नाम सूर्य है। ईरानीय शाखा से भारतीय शाखा के भिन्न होने के पूर्ववर्ती काल में मितानी एवं अन्यान्य पश्चिम एशिया निवासी आर्यलोग आदि आर्य साहित्य और संकृति से दूर हो गये थे। उसी समय आर्यों का 'स' ईरानियों के 'ह' में बदलगया। इस बदले हुए 'ह' को तातार के हूण और शक भारत में आक्रमणों के साथ लाये। मालवे की गद्दी से विक्रमादित्य ने उन्हें खदेड़ा परन्तु उनका 'स' के स्थान पर 'ह' का उच्चारण रहगया जो समस्त मालवा—राजपूताने के उन राजपूतों में अव-तक भी है जो वास्तव में उन्हीं के वंश धर हैं। अब तो इन प्रदेशों की प्रजा में भी यह उच्चारण एक सर्व सामान्य बन गया है।

चालदिया के साथ भारत के आर्यों की मुलाकात और उसका प्रभाव अथर्व वेद पर स्पष्ट देख पड़ता है। प्राचीन वैदिक ऋषि विश्व-कल्याणकारी देवताओं के उपासक थे। जैसाकि ऋग्वेद में दीख पड़ता है। किन्तु चालदिया निवासी अनिष्टकारी देवताओं के ही उपा-

ब्राह्मण के दो भेद हैं-विधि और अर्थवाद। विधियाँ दो प्रकार की हैं। जिन कर्मों में स्वभावतः आप से आप लोगों की प्रवृत्ति नहीं है उनमें प्रवृत्त कराना विधि है। यज्ञों का विधान पहिली विधि है। दूसरी विधि अज्ञात ज्ञापन है। जैसे एक ही अद्वितीय सत्य-ज्ञान स्वरूप ब्रह्म है, यह दूसरे किसी प्रमाण से ज्ञात नहीं है। अर्थवाद विधि-वाक्यों की प्रशंसा करता है। इस प्रशंसा करने का यह उद्देश्य होता है कि लोग उन कर्म-प्रशंसाओं को सुन कर उनके करने में प्रवृत्त हों।

"वायुर्वैक्षेपिष्ठा देवता"—वायु बहुत शीघ्रगामी देवता है। वायु की इस प्रशंसा से वेद उस कर्म की तरफ लोगों का ध्यान दिलाता है जिसका देवता वायु है।

सायण, वेद को अपौरुषेय तो मानते हैं। पर उस अपौरुषेय का अर्थ केवल यही है कि वेद मनुष्य कृत नहीं, ईश्वर कृत हैं। अपने जैमिनी न्याय माला में सायण ने उत्तर दिया है कि वेद की शाखाएँ काठक, कौथुम—तैत्तरीय आदि ऋषियों के नामों से प्रसिद्ध हुई हैं। फिर वे ऋषिकृत क्यों नहीं? वे कहते हैं ऋषियोंने उन शाखाओं का अपने शिष्यों को उपदेश मात्र देकर सम्प्रदाय चलाया है। सायण कहते हैं—

पौरुषेयं न वा वेद वाक्यंस्यात्पौरुषेयता।
काठकादि समाख्यातद्वाक्यत्वाच्यान्य वाक्यवत्।
समाख्यानंतु प्रवचनाद्वाक्यत्वं तु पराहतम्।
तत्कर्मनुपलम्भेनस्यात्ततोऽपौरुषेयता।

इसी जगह सायण कहता है—

'परमात्मातु वेदकर्ताऽपि न लौकिकः पुरुषः। यथा वाल्मीकि व्यास प्रभृतयोऽत्रतत्तद्ग्रन्थ निर्माणावसरे कैश्चिदुपलब्धाः अन्यैरप्यविच्छिन्न सम्प्रदायेनोपलभ्यन्ते। न तथा वेदकर्ता कश्चित् पुरुष उपलब्धः।

सायण का यह भी मत है कि वेद की ध्वनि से ही जगत का

निर्माण हुआ है। इस विषय में सायण का अभिप्राय यह है कि मनुष्य जब कोई चीज बनाना चाहता है तब उसके वाचक शब्द को प्रथम ही स्मरण कर लेता है। कुम्हार घड़ा बनाने में प्रथम घड़े का नाम याद कर लेता है। उसी प्रकार सृष्टि कर्ता ने यावत् संसार की रचना उन वस्तुओं के नाम-स्मरण ही से की है और ये वेद नित्य है।

इस पर शंका होती है कि प्रलय काल में तो संसार का एक दम नाश हो जाता है। सूर्य, चन्द्र आदि पदार्थ नहीं रह जाते, तब शब्द कहाँ रहा ? फिर सृष्टि के निर्माण में तो शब्द और अर्थ भी नये बनते होंगे। तब शब्द और अर्थ का वेद से नित्य सम्बन्ध कैसे रह सकता है। सायण ने वेदान्त की दृष्टि से इसका उत्तर दिया है कि यद्यपि महा-प्रलय के समय अन्तःकरण आदि की वृत्तियां स्फुरित अवस्था में नहीं होती हैं तो भी उनकी सत्ता अपने कारण में विद्यमान रहती है। अत-एव सूक्ष्म शक्ति रूप से कर्मों की विक्षेपक अविद्या वासनाओं के साथ निगूढ़ रहती हैं। मनु का भी यही मत है —

आसीदिदं तमो भूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥

जैसे कछुए के शरीर से छिपे हुए अवयव निकल आते हैं उसी प्रकार जीवों की सूक्ष्म भावनाएँ सृष्टि में जाग्रत हो जाती हैं। कर्मवास-नाओं के अनुसार ही जीवों की उत्पत्ति होती है। बीजांकुर न्याय से पूर्व वासना और आत्मा का सम्बन्ध है शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध है। इससे वेद की नित्यता बोध होती है।

श्वेताश्वेतोपनिषद् में लिखा है कि—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तंह देवमात्मबुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥

१ श्वे० ६। १८।

ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि अग्नि, वायु और सूर्य क्रमशः ऋक्-यजु और साम हुए १। इसके संबंध में सायण कहता है—

"नचजीव विशेषैरग्नि वाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वम् ।
ईश्वरस्याग्न्यादि प्रेरकत्वेन निर्मातृत्वात् ॥ ऋ० भा० २।

सायण ने वेदार्थ शैली के विषय में लिखा है कि हम ब्राह्मण, दो कल्प सूत्र (आपस्तम्भ-और बौधायन), मीमाँसा तथा व्याकरण की सहायता से वेद का अर्थ करते हैं।

इसी क्रम से उनने यजुर्वेद का पूरा भाष्य लिखा है। ऋक् संहिता भाष्य में अनुक्रमणि का, निरुक्त, व्याकरण, और ब्राह्मण का उदाहरण देकर संशयास्पद स्थलों पर अनेक प्रमाणों से मन्त्रों का सरल तथा निश्चित अर्थ किया है। श्रौत सूत्रों तथा ब्राह्मणों में ऋक्-यजु-और साम वेद के मंत्रों का विशेष विशेष यज्ञों में जिस समय जिस रूप में आवश्यकता पड़ती है वह निर्दिष्ट है। सायण ने उसका किसी तरह भी उल्लंघन न करके अर्थ किया है। सायण के भाष्यों में ऋग्वेद भाष्य बहुत प्रशंसित है। ऋग्वेद की भाषा क्लिष्ट भी है। सायण के पूर्व निरुक्तकार यास्क को छोड़कर और किसी की टीका ऋग्वेद पर न थी। निरुक्त में भी कुछ मन्त्रों पर ऊहापोह है। सायण ने ही सर्व प्रथम यह दुर्धर्ष कार्य किया है।

निरुक्त की कुछ मन्त्र-व्याख्याओं से तथा कुमारिल भट्ट के तन्त्र वार्तिक के कुछ वैदिक व्याख्यानों के विवरण से यह ज्ञात होता है कि वेद मन्त्रों के अर्थ आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक होते हैं। गीता में भी इसका जिक्र है *। सर्ववर्ती ब्रह्म को अध्यात्म, पृथ्वी

---

१ एवाग्नेरजायत यजुर्वेदोवायोः सामवेद आदित्यात्।

* अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोध्यात्ममुच्यते ।
अधिभूतं क्षरोभावः पुरुषश्चाधि दैवतम् । ८।३

आदि को अधिभूत, और सूर्य चन्द्रादि को अधिदेव कहा गया है। सायण ने ऋक संहिता भाष्य के प्रथम मन्त्र में बताया है कि मन्त्र से जो ज्ञात हो वही देव है। 'अतो दिव्यते इति देव. मन्त्रेण द्योत्यते इत्यर्थ.'' । परन्तु सायण ने स्पष्ट रूप से अधिदैव अर्थ को हो लिया है।

कलकत्ते के प्रसिद्ध वेद-विद्वान प० सत्यव्रत सामश्रमीजी का मत यह था कि वेदों का निर्माण आर्यावर्त मे ही हुआ है। अपने पक्ष की पुष्टि मे उन्होंने जो प्रमाण दिये है उनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ करते हैं। वे ऋग्वेद के ५। ५३। ६ मन्त्र को अति प्राचीन आर्यावर्त की सीमा वर्णन करने वाला कहते हैं। इस मन्त्र में रसा, कुभा, क्रुम, और सिन्धु इन चार नदियों का वर्णन है। 'रसा, उत्तर की बड़ी नदी, कुभा जिसे शायद काबुल नदी कहते हैं पश्चिम में, 'सरयू, पूर्व में, सिन्धु दक्षिण में, उसकी सीमा है। ऋग्वेद १०-७५ मे २१ नदियोंका नाम है। इक्कीस नदी वाला देश आर्यावर्त ही है। आपने अथर्व आदि के मन्त्र भी दिये है जिनमे वर्तमान भारतवर्ष और आस पास के देशों का उल्लेख है, परन्तु भारतवर्ष, आर्यों का आदि निवास इसी एक प्रमाण पर स्थिर नहीं हो सकता। ये वर्णन तो भारत मे आने पर पीछे से भी वेदों मे बढ़ाये हुए हो सकते हैं। ऋषि दयानन्द आर्यों का आदि स्थान तिब्बत बताते हैं जो भूगर्भ वेत्ताओं के मत का बहुत कुछ समर्थक है।

जो हो, ऋग्वेद पुरुष सूक्त में (१०। ९०) विराट् पुरुष से वेदों की उत्पत्ति मानी गयी है। यह विराट पुरुष हमारी तुच्छ सम्मति में असंख्य वर्षों और असंख्य मनुष्यों की जाति के समूह का नाम ही है।

दूसरा-अध्याय

ऋग्वेद

ऋग्वेद में १०२८ सूक्त हैं जिनमें दश हजार से ज्यादा ऋचाएँ हैं। ये सूक्त १० मण्डलों में बांटे गये हैं। इन सूक्तों में प्रार्थनाएँ हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि प्रथम और अंतिम मण्डल को छोड़कर शेष आठ मण्डलों का एक, एक ऋषि है। दूसरे मण्डल का गृत्समद, तीसरे का विश्वामित्र, चौथे का वामदेव, पाँचवे का अत्रि, छठे का भारद्वाज, सातवें का वशिष्ठ और आठवें का कण्व नवें का अंगिरा। पहले मण्डल में १९१ सूक्त हैं जिनमें कुछ के सिवा शेष सूक्तों के सब मिलकर १५ भिन्न भिन्न ऋषि हैं। दशवें मण्डल में भी १९१ सूक्त हैं और इनके ऋषि भी भिन्न भिन्न हैं। ऋग्वेद का क्रम और संग्रह जैसा कि वह अब है पौराणिक काल से भी प्रथम तैयार कर दिया गया था, ऐसा प्रतीत होता है। ऐतरेय आरण्यक (२, २) में मण्डलों के क्रम से ऋग्वेद के ऋषियों के नाम की कल्पित उत्पत्ति दी है और इसके पीछे सूक्तों की, ऋक् की, अर्ध ऋक् की, पद की, और अक्षरों तक की गिनती दी है। इससे पता लगता है कि पौराणिक काल के प्रारम्भ में बड़ी साव-धानी से उसके भाग उपभाग बना लिये गये थे और ऋग्वेद की हर एक ऋचा, हर एक शब्द, और हरएक अक्षर तक की गिनती करली गयी थी। इस गिनती के हिसाब से ऋचाओं की संख्या १०४०२ से लेकर १०६२२ तक, शब्दों की संख्या १५३८२६० और अक्षरों की ४३२००० है।

सबसे बड़ी बात जो ऋग्वेद को देखने से प्रतीत होती है और जो बिना किसी समुदाय और आचार्य के मत का लिहाज किये कही जा सकती है, यह है कि ऋग्वेद का मध्यकाल वह था जब आर्यों का विस्तार

लगभग सिन्धु या सरस्वती नदी तक हो चुका था। उत्तरा पथ में भी उनका विस्तार कठिनाई से गंगा के किनारों तक ही हुआ था। नगर नहीं थे, नागरिकता नहीं थी, किन्तु सभ्यता की उच्च सीमा उनके रहन सहन में पहुँच गयी थी। कुटुम्बों की प्रथा प्रचलित थी और कुटुम्ब का पिता उसका मुखिया माना जाता था।

ये लोग विजयी, और कार्यदक्षता के प्रबल प्रेम और उत्साह से युक्त एवं आमोद प्रमोद के साथ तरुण जातीय-जीवन से परिपूर्ण थे। ये धन, प्रभुता और खेतों से भरे पूरे एवं आनन्दित थे। इनने अपने बाहुबल से नये अधिकार और नये देश को यहाँ के आदि निवासियों से छीन लिया था। उस समय यहाँ के आदि निवासी व्यर्थ ही इनके विरुद्ध अपना अस्तित्व बनाये रखने की चेष्टा करते थे। निदान यह युग इनका और आदि निवासियों के युद्ध का युग था। ये अपनी जय का अभिमान अपनी ऋचाओं में प्रगट करते थे। प्रकृति में जो तेजवान, उज्ज्वल और लाभ दायक वस्तु होती आर्य उसकी प्रशंसा किया करते थे।

उस समय आर्य लोग एक ही जाति के थे। इनमें कोई जाति भेद न था। हाँ, देश में आर्य और आदि निवासी इस रूप में जाति भेद अवश्य था। व्यवसाय भेद भी उन दिनों स्पष्ट न था। कुछ बीघे भूमिका अधिकारी जो शान्ति के समय खेती करता और अपने पशुओं को पालता था वही युद्ध के समय अपने प्राणों की रक्षा करता था। वही फिर ऋचाएँ भी बनाता था। उस समय न मन्दिर थे न मूर्तियाँ। यज्ञ के लिए पुरोहितों की आवश्यकता पड़ने लगी थी और कहीं कहीं राजा का भी निर्माण हो गया था। परन्तु न राजा की कोई जाति थी न पुरोहित की। वे लोग स्वतंत्र थे।

बहुत से काम के जानवर पाल लिये गये थे। गाय, बैल, साँड़, बकरी, भेड़, सूअर, कुत्ते और घोड़े पालतू हो गये थे। रीछ, भेड़िये,

खरगोश, और सर्प मालूम हो चुके थे। हँस, वत्तक, कोयल, कौआ, लवा, सारस और उल्लू भी प्राचीन आर्यों को मालूम हो गये थे।

भिन्न भिन्न व्यवसाय प्रारम्भ हो रहे थे किन्तु शिल्प का प्रचार बढ़ गया था। घर, गाँव, नगर और सड़कें बनने लगीं थीं। नावों द्वारा व्यापार की वस्तुओं का आयात निर्यात एवं व्यापारिक यात्राएँ होने लगीं थीं। सूत कातना, कपड़े बुनना, तह लगाना, रोम, चर्म और ऊन को काम में लाना वे जान चुके थे। बढ़ई का काम उन्नत दशा में था और रंगने की विद्या भी जान ली गयी थी। आर्य खेती की तरफ अधिक ध्यान देते थे। कुछ कुलपति परिवारों को लिये अच्छी भूमि और चराहगाह की तालाश में आगे को बढ़ रहे थे।

युद्ध होते थे, जंगली पशु और जंगली जातियों से। हड्डी, लकड़ी, पत्थर और धातु के हथियार बनाये जाते थे। तीर–धनुष और तलवार, भाले ये हथियार बन चुके थे। धातुओं में चाँदी (रजत) सोना (हिरण्य) लोहा (अयस) मालूम हो चुके थे। यह सीधी सादी छोटीसी प्रजा अभी तक राजा का निर्माण नहीं कर सकी थी। प्रजापति या विस्पति पति ही उनका राजा था, वे उसी के आधीन रहते थे। और यह पुरुष केवल अपने बड़प्पन से बिना किसी शक्ति प्रयोग के शासन करता था। प्रजा शब्द सन्तान के अर्थ में प्रयुक्त होता था (प्रजोपश्यामि सीमन्तापायन संस्कार) खेती की तरफ ऋग्वेद के काल में अधिक ध्यान दिया गया था। यह इसी एक बात से .जाहिर है कि आर्यों के लिए-बल्कि जन साधारण के लिए एक शब्द का बहुधा प्रयोग मिलता है-वह शब्द है 'चर्षन' और 'कृष्टि' जो चृष और कृष धातु से बने हैं, जिनका अर्थ ही खेती करना है। ऋग्वेद के एक सूक्त में क्षेत्र पति की स्तुति है, देखिए यह किसानो के लिये कितनी उपयुक्त है—

१—हम लोग इस खेत को 'क्षेत्रपति' की मदद से जोतेंगे। वह हमारे पशुओं की रक्षा करें।

२—हे क्षेत्रपति ! जिस तरह गाएँ दूध देती हैं उसी तरह मधुर, शुद्ध, जल की वर्षा हमें प्राप्त हो। जल देव हमें सुखी करें।

३—बैल आनन्द से काम करें, मनुष्य आनन्द से काम करें, हल आनन्द से चलें, जोत को आनन्द से बाँधो, पैने को आनन्द से चलाओ।

४—हे शुन और सीर ! इस सूक्त को स्वीकार कीजिए। जो मेह आपने द्युलोक मे उत्पन्न किया है उससे पृथ्वी को सींचिए।

५—हे सुभग सीते (हल की फाल) आगे बढ़ो, हम प्रार्थना करते हैं, हम लोगों को धन और फसल दो।

६—हल के फाल (सीता) आनन्द से जमीन को खोदें, मनुष्य बैलों के पीछे आनन्द से चलें, पर्जन्य पृथ्वी को वर्षा से तरकरे। हे सुन और शीर ! हमें सुखी करो (४ । ५७)

७—हलों को बाँधो, जूओं को फैलाओ, और जुती भूमि पर बीज बोओ, अनाज सूक्तों के साथ बढे, आस पास के खेतों में हँसुऐ चलें जहाँ अनाज पक गया है।

८—पशुओं के लिये कठडे तैयार हो गए हैं। गहरे, अच्छे और कभी न सूखने वाले कुए मे चमडे की रस्सी चमक रही है और पानी सहज में निकल रहा है। पानी निकालो।

९—घोड़ों को ठण्डा करो। खेत में ढेरी लगे अनाज को उठाओ और गाड़ी मे भरलाओ। यह कुआ जो पशुओं के पीने के लिए पानी से भरा हुआ है, एक द्रोण विस्तार में है। उसमे पत्थर का एक चक्र है। मनुष्यों के पीने का कुण्ड एक स्कन्द है इसे पानी से भरो। (१०।१०१)

उपर्युक्त प्रमाणों से प्रकट है कि उस काल मे कृषि का प्रचार खूब था। मं० १२। सू० ६८। ऋ० १ में हला करके चिड़ियों को उडा देने तथा मं० १० सू० ९९। ऋ० ४ में नालियों द्वारा खेत सीचने का वर्णन मिलता है। गाय चराना, पशु पालना, डाकू लुटेरों आदि का भी वर्णन है। खरीद बिक्री का भी वर्णन है।

"कोई मनुष्य पहले बहुत सी वस्तु कम दाम पर बेच डालता है और फिर खरीददार के यहाँ बेचना अस्वीकार कर अधिक दाम मांगता है। पर एक बार जो मूल्य तै हो गया है वह उससे अधिक नहीं ले सकता (४, २४ । ६)। मं० ४ । सू० २७ में सोने के सिक्के का भी वर्णन है। 'निष्क' शब्द इसके लिए प्रयोग में आया है।

विवाह पूर्ण युवावस्था में होते थे। विवाहोत्सव पर वर की अपेक्षा कन्या के घर अधिक धूम धाम होती थी। वर-कन्या वेदी पर अग्नि प्रदक्षिणा करते थे और पत्थर पर पैर रखवाते थे। विवाह समाप्त होने पर अलं-कृत वधू को लाल पुष्पों से शोभित श्वेत बैलों की गाड़ी में बैठा कर वर अपने घर ले जाता था। बहुतसी स्त्रियाँ वृद्धावस्था तक कुमारी रहतीं थीं। पुत्र हीन होना दुर्भाग्य समझा जाता था, दत्तक पुत्रों का भी विधान था। कन्याओं की अपेक्षा पुत्र का अधिक सन्मान होता था।

'व्यभिचार, गर्हित पाप था। चोरी करना बड़ा दुष्कर्म था। प्रायः गाएँ चोरी जातीं थीं। चोरों को बाँध कर पीटा जाता था। जुआ खेलते थे; पर भद्र पुरुष उससे घृणा करते थे।

वस्त्र प्रायः ओढ़ने या लपेटने के होते थे। वे ऊन के होते थे, उन पर छींटें छपी होती थीं। जरीदार वस्त्र भी होते थे।

स्त्री-पुरुषों में केश रखने का प्रचार था। 'शतदती' और 'कङ्कतिका' नामक औषधियों से केश बढ़ते थे। बालों में सुगन्धित वस्तु लगायी जाती थी। वशिष्ट लोग केशों का दाहिनी ओर जूड़ा बांधते थे। स्त्रिएँ बाल खुले रखतीं थीं। 'रुद्र' और 'पूषा' केश विन्यास के प्रकार थे। उत्सवों में मालाएँ पहनी जाती थीं। पुरुष दाढ़ी रखते थे। दूध खास खाद्य था। दूध में अन्न पकाकर खाते थे। कभी सोम रस दूध में मिला कर पीते थे। घृत बहुत प्रिय था। धान्य भूनकर और पीस कर पूए बनाये जाते थे। फल भी खाये जाते थे।

पकाने के पात्र लोहे और मिट्टी के तथा पीने के पात्र लकड़ी के होते थे। वे लोग शिकार करते थे। धनुषबाण मुख्य था; हिरणों को वागुरा से, पक्षियों और सिंहों को जाल से पकड़ते थे। सूअर को कुत्तों से पकड़ाते थे। लुहार, चर्मकार, चटाई वाले, वस्त्र बुनने वाले मौजूद थे।

रथ क्रीड़ा, द्यूत क्रीड़ा, नर्तन ये इनके विनोद के साधन थे। नर्तन में स्त्रियाँ शृंगार करके भाग लेती थीं (ऋ० १०। ७६। ६)। बाजों में दुन्दुभी, वाण वाद्य, वीणा आदि मौजूद थे।

भोजन के सम्बन्ध में ऋग्वेद में 'यव' 'धान्य' की बहुतायत है। यद्यपि आज कल की संस्कृत में 'यव' जौ के अर्थ में आता है परन्तु उस समय जौ गेहूँ, बैलों के अर्थ में आता था। बल्कि अन्न मात्र के लिए यव शब्द का प्रयोग होता था। उसी प्रकार 'धान्य' शब्द से चावल का अर्थ होता है पर वेद में यह शब्द भुने हुए जौ के अर्थ में आया है। व्रीहि (चावल) का ऋग्वेद में कहीं भी जिक्र नहीं है। कई प्रकार की रोटियों का जिक्र 'पक्ति' "पुरोदास" 'अपूप' "करम्भ" आदि के रूप में (मं० ३। सू० ५२ ऋ० १–२, मं० ४ सू० १४ ऋ० ७ आदि में) पाया जाता है।

मांसाहार का प्रकरण भी वेद में दीख पड़ता है और इस बात का घोर संदेह होता है कि क्या प्राचीनकाल के आर्य मांस खाते थे? उस काल में जैसा जीवन था उसे देखते यह अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। ऋग्वेद के मं० १ सू० ६१ ऋ० १२। मं० २ सू० ७ ऋ० ५। मं० ५ सू० २९ ऋ० ७ और ८। मं० ६ सू० १७ ऋ० ११। मं० ६ सू० १६। ४७। मं० ६ सू० २८ ऋ० ४। मं० १० सू० २७ ऋ० २। मं० १० सू० २८ ऋ० ३ आदि में इस प्रकार के प्रमाण मिलेंगे। मं० १०। सू० ८९ ऋ० १४ में ऐसे स्थान का वर्णन है जहाँ पशुवध किया जाय और मं० १०। सू० ९१ ऋ० १४ में अन्य पशुओं

के वध की बात है। यद्यपि यह सत्य है कि इन मंत्रों के अर्थ ऐसे भी किये जा सकते हैं जिन से और ही अर्थ प्रकट हो। परंतु मांस और पशुवध सम्बन्धी अर्थ इतने निकट और स्पष्ट हैं कि यदि हम वेदों का बहुत ही बड़ा पक्षपात न करें, और पूर्वजों के मांसाहार से सर्वथा चिढ़ न जायँ तो इन अर्थों से इन्कार करना सर्वथा कठिन है।

ऋग्वेद के पहले मंडल के १६२ वें सूक्त में बेत से घोड़े की देह पर निशान करने और इसी निशान पर से उसके काटे जाने और अंग अंग अलग किये जाने का उल्लेख है।

दूसरी विचारणीय बात सोम रस की है जो निस्संदेह भंग के समान नशे की चीज थी और जिसे आर्य लोग पीते थे। ऋग्वेद के पूरे एक मण्डल में इस का जिक्र है। ऐसा प्रतीत होता है, इसी सोम के के कारण ईरान के आर्यों और भारत के आर्यों में बड़ा झगड़ा हुआ। जन्दावस्ता में आर्यों की इस बुरी लत का कई जगह उल्लेख है। आर्यों और ईरानियों के दो पृथक गिरोह बन कर सुर और असुर के नाम से विख्यात होने का मूल कारण यही सोम-पान प्रतीत होता है। यह सोम पत्थर पर कुचल कर और ऊनी छन्ने में छान कर दूध मिला कर पिया जाता था। यह बात ऋग्वेद के ६ वें मण्डल में है।

वस्त्र बुनने का जिक्र म० २ सू० ३ ऋ० ६। म० २ सू० ३८ ऋ० ४ आदि में है। म० १० सू० २६ ऋ० ६ में ऊन बुनने और उसके रंग उड़ाने का देवता पूषण कहा गया है। म० १ सू० १६४ ऋ० ४४ में आग लगाकर जंगल साफ करने का वर्णन है। बढ़ई के काम का वर्णन म० ३ सू० ५३ ऋ० १९। म० ४ सू० २ ऋ० १४। म० ४ सू० १६ ऋ० २० में है। म० ३ सू० १ ऋ० ५ में लुहार के काम का और म० ६ सू० ३ ऋ० ४ में सुनारों के सोना गलाने का वर्णन मिलता है। म० १ सू० १४० ऋ० १०। म० २ सू० ३९

ऋ० ४। म० ४ सू० ५३ ऋ० २ में लड़ाई के हथियारों का वर्णन है। म० २ सू० ३४ ऋ० ३ में सिर के सुनहरे झिलमिल का तथा म० ४ सू० ३८ ऋ० ९ में कन्धों या भुजाओं के कवच का वर्णन है। म० ५ सू०५७ ऋ० २ में तलवार या बाण को बिजली की उपमा दी है। म० ६ सू० २७ ऋ० ६ में हजारों कवचधारी योद्धाओं का वर्णन है। म० ६ सू० ४७ ऋ० १० में तेज तलवारों और इसी सूक्त की २६ वीं और २७ वीं ऋचाओं में लड़ाई के रथों और दुन्दुभी बाजों का वर्णन है। म० ४ सू० २ ऋ० ८ में घोड़े के सुनहरी साजों का वर्णन है। म० ७ सू० ३ ऋ० ७। म० ७ सू० १२ ऋ० १४। म० ७ सू० ९५ ऋ० १ मे लोहे के मजबूत किलों और म० ४ सू० ३० ऋ० २० में पत्थर के बड़े बड़े नगरों का वर्णन मिलता है। म० २ सू० ४१ ऋ० ५। म० ५ सू० ६२ ऋ० ६ में हजारों खंभों वाले मकानों का भी वर्णन मिलता है।

उपर्युक्त तमाम वर्णन इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि ऋग्वेद के काल में अर्थात् आर्यों के प्रारम्भिक जीवन में आर्यों ने कैसी उन्नति कर ली थी।

ऋग्वेद में दस्यु, दास तथा अनार्यों से भयानक युद्धों का वर्णन भी आया है। इन युद्धों में धनुर्बाणों का अधिक उपयोग हुआ है। घोड़ों का भी उपयोग है जिसे दस्यु नहीं जानते थे और जिससे वे डरते थे। पाठकों के मनोरंजन के लिए हम ऐसे कुछ वर्णन उद्धृत करते हैं। ये सब ऋग्वेद के सूक्त हैं।

इन्द्रयुद्ध "जिसका आवाहन बहुतों ने किया है और जिसके साथ उसके शीघ्रगामी साथी हैं उसने अपने वज्र से पृथ्वी पर रहनेवाले दस्युओं और सिम्यों का नाश करके खेतों को अपने गोरे मित्रों (आर्यों) में बाँट दिया। वज्र का पति सूर्य का प्रकाश करता है और जल बरसाता है" (ऋ० १-१००, १८)

"इन्द्र ने अपने वज्र और अपनी शक्ति से दस्युओं के देश का नाश कर दिया और अपनी इच्छा के अनुसार भ्रमण करने लगा। हे वज्री! तू हम लोगों के सूक्तों पर ध्यान दे, दस्युओं पर अपने शस्त्र चला और आर्यों की शक्ति और यश बढ़ा।"

(ऋ० १-१०३-३)

"कुयव दूसरे के धन का पता पा कर उसे अपने काम में लाता है। वह पानी में रह कर उसे खराब करता है। उसकी दोनों स्त्रियाँ जो नदी में स्नान करती हैं, शीफा नदी में डूब मरें!"

"अयु पानी में एक गुप्त किले में रहता है। वह पानी की बाढ़ में आनन्द से रहता है। अञ्जसी, कुलिशी और वीर पत्नी नदियों के पानी उसकी रक्षा करते हैं।"

(ऋ० १-१०४-३ और ४)

"इन्द्र लड़ाई में अपने आर्य पूजकों की रक्षा करता है। वह जो कि हजारों बार उनकी रक्षा करता है। सब लड़ाइयों में भी उनकी रक्षा करता है। जो लोग प्राणियों (आर्यों) के हित के लिए यज्ञ नहीं करते, उन्हें वह दमन करता है। शत्रुओं की काली चमड़ी को वह उधेड़ डालता है, उन्हें मार डालता है, और (जलाकर) राख कर डालता है। जो लोग हानि पहुँचानेवाले और निर्दयी हैं उन्हें वह जला डालता है।"

(ऋ० १-१३०)

"हे शत्रुओं के नाश करनेवाले! इन सब लुटेरों के सिर को इकट्ठा करके उन्हें अपने चौड़े पैर से कुचल डाल! तेरा पैर चौड़ा है।"

"हे इन्द्र! इन लुटेरों का बल नष्ट कर उन्हें इस बड़े और घृणित खड्ढे में फेंक दे।"

"हे इन्द्र! तूने ऐसे-ऐसे पचास से भी तिगुने दलों का नाश किया है। लोग तेरे इस काम की प्रशंसा करते हैं। पर तेरी शक्ति के आगे यह भी बात नहीं है।"

"हे इन्द्र ! उन पिशाचों का नाश कर जो कि लाल रंग के हैं और भयानक हल्ला मचाते हैं। इन सब राक्षसों का नाश कर।"

(१-१३३,-२-५)

"हे अश्विनो ! उन लोगों का नाश करो जो कुत्तों की नाईं भयानक रीति से भूंक रहे हैं और हम लोगों का नाश करने के लिए आ रहे हैं। उन लोगों को मारो जो हम लोगों से लड़ने की इच्छा करते हैं। तुम उन लोगों के नाश करने का उपाय जानते हो। जो लोग तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, उनके हरएक शब्द के बदले उन्हें धन मिले। सत्यदेव ! हम लोगों की प्रार्थना स्वीकार करो।"

दधिका घोड़ा—अमेरिका जीतनेवाले स्पेन देशवासियों की जीत का कारण अधिक करके उनके घोड़े ही थे, जिनको अमेरिका के निवासी लोग काम में लाना नहीं जानते थे और इस कारण से उन्हें डर की दृष्टि से देखते थे। ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीन हिन्दू आर्यों के घोड़ों ने भी आर्यावर्त के आदिवासियों में ऐसा ही डर उत्पन्न किया था। अतएव नीचे लिखा हुआ वर्णन जो कि दधिका अर्थात् युद्ध के देवतुल्य घोड़े के सम्बन्ध में है और जो एक सूक्त का अनुवाद है, मनोरंजक होगा।

"जिसतरह लोग किसी कपड़ा चोरी करनेवाले चोर पर चिल्लाते और हल्ला करते हैं, उसी तरह शत्रु लोग दधिका को देख कर चिल्लाते हैं। जिस तरह झपटते हुए भूखे बाज को देख कर चिड़िया हल्ला करती है, उसी तरह शत्रु लोग भोजन और पशु लूटने की खोज में फिरते हुए दधिका को देख कर हल्ला करते हैं।"

"शत्रु लोग दधिका से डरते हैं जो कि बिजली की नाईं दीप्तिमान् और नाश करनेवाला है। जिस समय वह अपने चारों ओर के हजारों आदमियों को मार भगाता है उस समय वह जोश में आ जाता है और अधिकार के बाहर हो जाता है।"

(४-३८ ५ और ८)

ऋग्वेद के अनेक वाक्यों से जाना जाता है कि कुत्स एक प्रतापी, योद्धा और काले आदि निवासियों का एक प्रबल नाश करनेवाला था। मं० ४ सू० १६ में लिखा है कि इन्द्र ने कुत्स को धन देने के लिए मायावी तथा पापी दस्यु का नाश किया, उसने कुत्स की सहायता की और आप दस्यु को मारने के लिये उसके घर आया और उसने लड़ाई में पचास हजार "काले शत्रुओं" को मारा। मं० ४ सू० २८ ऋ० ४ से पता चलता है कि इन्द्र ने दस्युओं को गुण हीन तथा सब मनुष्यों का घृणापात्र बनाया है। मं० ४ सू० ३ ऋ० १५ से जाना जाता है कि इन्द्र ने एक हजार पाँच सौ दासों का नाश किया। *

मं० २ सू० ७ ऋ० ३, मं० ६ सू० १८ ऋ० ३ और मं० ६ सू० २५ ऋ० २ में दस्यु लोगों तथा दासों के दमन करने और नाश करने के इसी तरह के वर्णन हैं। मं० ६ सू० ४१ ऋ० २० में दस्यु लोगों के रहने की एक अज्ञात जगह का विचित्र वर्णन है जो कि अनुवाद करने योग्य है।

"हे देवताओ! हम लोग यात्रा करते हुए अपना रास्ता भूल कर ऐसी जगह आ गये हैं जहाँ पशु नहीं चरते। यह बड़ा स्थान केवल दस्युओं को ही आश्रय देता है। हे बृहस्पति! हम लोगों को अपने पशुओं की खोज में सहायता दो। हे इन्द्र! मार्ग भूले हुए अपने पूजनेवालों को ठीक रास्ता दिखला।"

यह जान पड़ता है कि आर्य लोग आदिवासी असभ्यों के चिग्घाड़ और हल्ले का वर्णन बहुत ही निंदा पूर्वक करते थे। ये सभ्य विजयी लोग यह बात कठिनता से विचार सकते थे कि ऐसी चिग्घाड़ भी भाषा हो सकती है, अतएव उन्होंने इन असभ्यों को कहीं कहीं भाषा हीन लिखा है।

* मं० ५ सू० २० —

ऊपर दो आदिवासी लुटेरों अर्थात् कुयव और अयु का हाल दिया जा चुका है जो कि नदियों से घिरे हुए किलों मे रहते थे, और गाँवों में रहनेवाले आर्यों को दुख दिया करते थे। कई जगह एक तीसरे आदिवासी प्रबल मुखिया का भी वर्णन मिलता है जो कि कदाचित काला होने के कारण कृष्ण कहा गया है।

"वह तेज कृष्ण, अंशुमती के किनारे १० हजार सेना के साथ रहता था। इन्द्र अपने ज्ञान से इस चिल्लानेवाले सरदार की बात जान गया। उसने मनुष्यों (आर्यों) के हित के लिए इस लुटेरी सेना का नाश कर डाला।"

"इन्द्र ने कहा मैंने तेजकृष्ण को देखा है। जिस तरह सूर्य बादलों में छिपा रहता है उसी तरह वह अंशुमती के पासवाले गुप्त स्थान मे छिपा है। हे मरुत ! मेरा मनोरथ है कि तुम उससे लड़कर उसका नाश कर डालो।'

"तब तेजकृष्ण अंशुमति के किनारे पर चमकता हुआ दिखायी पड़ा। इन्द्र ने बृहस्पति को अपनी सहायता के लिए साथ लेकर उस तेज का और बिना देवता की सेना का नाश कर दिया।"

(८, ९६, १३-१५)

दस्यु लोग केवल चिल्लानेवाले तथा बिना भाषा के ही नही लिखे गये हैं, किन्तु कई जगह पर तो वे मुश्किल से मनुष्यों की गिनती में माने गये है। एक जगह लिखा है—

"हम लोग चारों ओर दस्यु जातियों से घिरे हुए है। वे यज्ञ नही करते, वे किसी चीज में विश्वास नहीं करते, उनकी रीति व्यवहार भिन्न है, वे मनुष्य नहीं हैं। हे शत्रुओं के नाश कर्ता उन्हें मार ! दस्यु जाति का नाश कर !

(१०-२२-८)

म० १० सू० ४९ में इन्द्र कहता है कि—'मैंने दस्यु जाति को "आर्य" के नाम से रहित रखा है (ऋ० ३) दस्यु जाति की नवीन वस्तियों का और वृहद्रथ का नाश किया है (ऋ० ६) और दासों को काट कर दो टुकड़े कर डालता हूँ, उन लोगों ने इसी गति को प्राप्त होने के लिए जन्म लिया है। (ऋ० ७)

सुदास एक आर्य राजा था तथा विजयी था। उसके विषय में प्रायः यह वर्णन आया है कि अनेक आर्य जातियाँ और राजा लोग मिलकर उससे लड़े, पर उसने उन सभों को पराजित किया। आर्य जातियों के बीच इन विनाशी युद्धों के, तथा जो जातियाँ सुदास से लड़ीं थीं उनके वर्णन ऋग्वेद में इतिहास की दृष्टि से बड़े मूल्यवान हैं।

(८) "धूर्त शत्रुओं ने नाश करने का उपाय सोचा और अदीन नदी का बाँध तोड़ डाला। परन्तु सुदास अपनी शक्ति से पृथ्वी पर स्थित रहा और चयमान का पुत्र मरा।"

(९) "क्योंकि नदी का पानी अपने पुराने मार्ग से ही बहता रहा, उसने महा मार्ग नहीं किया और सुदास का घोड़ा समस्त देश में घूम आया। इन्द्र ने लड़ाके और बतक्कड़ वैरियों और उनके बच्चों को सुदास के आधीन कर दिया।"

सुदास के युद्ध—(११) सुदास ने दोनों प्रदेशों के २१ मनुष्यों को मार कर यश प्राप्त किया। जिस तरह यज्ञ के घरमें युवा पुरोहित कुश काटता है उसी तरह सुदास ने अपने शत्रुओं को काट डाला। वीर इन्द्र ने उसकी सहायता के लिए मरुत्स को भेजा।

(१४) "अनु और द्रुह्य के छासठ हजार छःसौ छासठ योद्धा जिनने पशुओं को लेना चाहा था और सुदास के शत्रु थे सब मार डाले गये। ये सब कार्य इन्द्र का प्रताप प्रकट करते हैं।"

(११) "इन्द्र ने ही बेचारे सुदास को इन सब कामों के करने

(५) हे इन्द्र और वरुण ! शत्रुओं के हथियार हम पर चारों ओर से आक्रमण करते हैं, शत्रु लोग लूटों में हम पर आक्रमण करते हैं। तुम दोनों प्रकार की सम्पत्ति के स्वामी हो। युद्ध के दिन हमारी रक्षा करो।

(६) 'युद्ध के समय दोनों दल सम्पत्ति के लिये इन्द्र और वरुण की प्रार्थना करते थे। पर इस युद्ध में तुमने तृत्सुओं के सहित सुदास की रक्षा की जिन पर दस राजाओं ने आक्रमण किया था।'

(७) "हे इन्द्र और वरुण ! वे दस राजे जो कि यज्ञ नहीं करते थे मिलकर भी सुदास को हटाने में समर्थ नहीं हुए।"

(८) हे इन्द्र और वरुण ! जिस समय सुदास दस सरदारों से घिरा हुआ था और जिस समय सफेद वस्त्र धारण किये हुए, जटा जूट धारी तृत्सु लोगों ने नैवेद्य और सूक्तों से तुम्हारी पूजा की थी तो तुम ने सुदास को शक्ति दी थी (७, ८३)

(१) "जब युद्ध का समय निकट आ पहुँचता है और योद्धा अपना कवच पहिन कर चलता है तो वह बादल के समान देख पड़ता है। योद्धा तेरा शरीर न छिदे, तू जय लाभ कर, तेरे शस्त्र तेरी रक्षा करें।"

(२) "हम लोग धनुष से पशु जीत लेंगे, हम लोग धनुष से जय प्राप्त करेंगे, हम लोग धनुष से भयानक और घमंडी शत्रुओं की अभिलाषा को नष्ट करेंगे। हम लोग धनुष से अपनी जीत चारों ओर फैलावेंगे।"

(३) "जब धनुष की प्रत्यंचा खींची जाती है तो वह युद्ध में आगे बढ़ते हुए तीर चलाने वाले के कान तक पहुँचती है। उसके कान में धीरज के शब्द कहती है और वह तीर को इस तरह गले लगाती है जैसे कोई प्यार करने वाली स्त्री अपने पति को गले लगाती है।"

(५) "तरकस बहुत से तीरों के पिता के समान है। बहुत से

तीर उसके बच्चों की भांई है। वह आवाज करता हुआ योद्धा की पीठ पर लटकता है। लड़ाई में उसे तीर देता है और शत्रु को जीतता है।"

(६) "चतुर सारथी अपने रथ पर खड़ा होकर जिधर चाहता है उधर अपने घोड़ों को हाँकता है। रास घोड़ों को पीछे से रोके रहती है, उनका यश गाओ।"

(७) 'घोड़े जोर से हिन-हिनाते हुए अपने खुरों से धूल उड़ाते हैं और रथों को लेकर क्षेत्र पर जाते हैं। वे हटते नहीं वरन् लुटेरे शत्रुओं को अपने पैरों के नीचे कुचल डालते हैं।'

(११) 'तीर में पर लगे हैं। उसकी नोक हरिन के सींग की है। अच्छी तरह से खींची जाकर तथा तान से छोड़ी जाकर वह शत्रु पर गिरती है। जहाँ पर मनुष्य इकट्ठे वा जुदे जुदे खड़े रहते हैं वहाँ पर तीर लाभ उठाती है।'

(१४) 'चमड़े का बन्धन कलाई को धनुर की ताँत की रगड़ से बचाता है और कलाई के चारों ओर साँप की नाँई लिपटा रहता है। वह अपना काम जानता है, गुणकारी है और हर तरह पर योद्धा की रक्षा करता है।'

(१५) 'हम उस बाण की प्रशंसा करते हैं जो कि जहर से बुझा हुआ है, जिस की नोक लोहे की है और जो पर्जन्य को है।'

ऋग्वेद ही से यह बात भी प्रमाणित होती है कि आर्यों ने लगातार युद्ध करके सिन्धु से सरस्वती तक का प्रदेश और पर्वतों से समुद्र तक का देश जीत लिया था। ऋग्वेद में सिन्धु और उसकी पाँचों सहायक नदियों का उल्लेख १० वें मंडल के ७५ वें सूक्त में है। इस सूक्त में तीन बड़े-बड़े प्रवाहों का वर्णन है। एक वह जो उत्तर पश्चिम से बह कर सिन्धु में मिलता है। दूसरा वह जो उत्तर पूर्व से उस में मिलकर दूरस्थ गंगा यमुना में मिल जाता है। इस प्रकार एक भौगोलिक सीमा बन जाती है

जिसके उत्तर में हिमालय, पश्चिम में सिन्धु नदी, और सुलेमान पहाड़, दक्षिण में सिन्धु नदी और समुद्र और पूर्व में गंगा यमुना है। पंजाब की पाँचों नदियों और सिन्धु तथा सरस्वती सब को मिलाकर सप्त नदी नाम दिया गया है। सप्त नदी की माता सिन्धु है। (मं० ७ सू० ३६ ऋ० ६)

जिस समय गङ्गा और यमुना का भरत खण्ड में प्रवाह नहीं हुआ था उस समय सरस्वती नदी ही भारतवर्ष की सर्वप्रधान नदी थी। इसका प्रवाह अत्यन्त विस्तीर्ण और प्रबल था। ऋग्वेद के षष्ठ और सप्तम मण्डल* में सरस्वती का वर्णन है। उस वर्णन से पता लगता है कि सरस्वती नदी जो आज कालचक्र से सूख गयी है और जिसके विषय में हिन्दू जनता का विश्वास है कि वह त्रिवेणी संगम या प्रयाग में गंगा यमुना में गुप्त रूप से मिली है, हिमालय से निकली थी और समुद्र तक उसका अत्यन्त विस्तीर्ण प्रवाह था। इन वेद मन्त्रों में सरस्वती नदी को १ "शत्रुओं के आक्रमण से बचाने को दुर्ग भूमि सी सुरक्षित, और सुदृढ़ लोहे के फाटक के समान कहा गया है। वेग वती होने के विषय में कहा गया है कि "रथ्येवयाति" मानो रथ पर चढ़ी जाती है। तथा इस सरस्वती ने अन्य नदियों को अपने महत्व से परास्त कर दिया है, ऐसा स्पष्ट वर्णन है।

*-प्रक्षोदसा धायसा सस्रएषा सरस्वती धरुण मायसी पूः।
प्रबाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिम्ना सिन्धुरन्याः॥
एका चेत् सरस्वती नदीनाँ शुचिर्यती गिरिभ्य आसमुद्रात् राय
श्चेतती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय।
ऋ० मं० ७ सू० ६५।
आयत्साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धु माता।
याः सुष्वयंत सुदुघाः सुधारा अभिस्वेन पयसा पीप्यानाः॥
ऋ० मं० ६। अ० ३। सू० ३७
" दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि"

पुराणों से पता लगता है कि हिमालय के प्लक्ष प्रस्रवण से सरस्वती निकली, और पुण्य तीर्थ पृथूदक कुरुक्षेत्र के ब्रह्मावर्त प्रदेश में होती और क्रमशः पश्चिम दक्षिण झुकती हुई द्वारिका के समीप समुद्र में मिली है।

इस सरस्वती नदी के तीर पर प्रजापति ब्रह्मा से लेकर अनेक देवताओं ऋषियों और मुनियों ने बड़े-बड़े यज्ञ किये थे और सप्त ऋषियों से लेकर अनेक प्रमुख ऋषिवरों के आश्रम सरस्वती के तीर पर थे। इन सब के ब्रह्मावर्त नामक प्रदेश में जो कुरुक्षेत्र के आस पास है अधिक आश्रम थे। मनुस्मृति में लिखा है—

'सरस्वती दृषद्वत्योर्देव नद्योर्यदन्तरम्।
तन्देव निर्मित देशं ब्रह्मावर्तविदुर्बुधा' ॥

अर्थात्—सरस्वती और दृषद्वति इन दोनों नदियों के बीच का देश ब्रह्मावर्त कहाता है।

इतिहास की छोटी से छोटी बात पर भी गहरा विचार करना चाहिए।

तैत्तिरीय, शतपथ ब्राह्मण में भी इस क्षेत्र की प्रशंसा की गयी है। महाभारत के शल्य पर्व में, गदायुद्ध पर्व में, बलदेव तीर्थ यात्राध्याय और सारस्वतोपाख्यान के कई स्थलों में सरस्वती और कुरुक्षेत्र का वर्णन आया है। बलदेव जी जब तीर्थ यात्रा को निकले तब द्वारका से चलकर सरस्वती के निकास स्थान प्लक्ष प्रस्रवण पर्वत पर चढ़ गये थे। यहाँ सरस्वती की शोभा देखकर उनने कहा है कि:—

सरस्वती वास समा कुतो रतिः,
सरस्वती वास समा कुतो गुणाः।
सरस्वती प्राप्य दिवंगता जना.
सदा स्मरिष्यन्ति नदीं सरस्वतीम्।
सरस्वती सर्व नदीषु पुण्या,

सरस्वती लोक सुखावहा सदा ।
सरस्वती प्राप्य जनाः सुदुष्कृतं,
सदा न शोचन्ति परत्र चेह च ।
तीर्थपुण्यतमं राजन् पावनं लोक विश्रुतम् ।
यत्र सारस्वतो यातः सोऽङ्गिरास्तपसोनिधिः ।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा वाजिमेधं फलं लभेत् ।
सरस्वती गतिं चैव लभते नाऽत्र संशयः ॥

उक्त श्लोकों में "सरस्वतीप्राप्यदिवंगताः" और "सरस्वती गतिं चैव लभते" इत्यादि पदों से निश्चय होता है कि, बलदेवजी के समय से पूर्व ही सरस्वती सूख गयी थी । इसकी पुष्टि में उसी तीर्थ यात्रा प्रकरण में और भी प्रमाण मिलते हैं जैसे—

'ततो विनाशनं राजन् जगमाथ हलायुधः ।
शूद्रा भीरान् प्रति द्वेषाद्यत्र नष्टा सरस्वती ॥
यस्मात्सा भरत श्रेष्ठ द्वेषान्नष्टा सरस्वती ।
तस्मात्तदृष्टयो नित्यं प्राहुर्विनशनेतिहि" ॥

इससे पता लगता है कि शूद्र और अहीर जाति के लोगों के किसी प्रतिबन्ध के कारण जिस प्रदेश में सरस्वती नष्ट हुई उसका नाम 'विनशन' पड़ा । यह विनशन प्रदेश वर्तमान मेवाड़ प्रान्त के पश्चिम भाग का मरु प्रदेश प्रतीत होता है ।

यद्यपि सरस्वती नदी महाभारत के काल में नष्ट हो चुकी थी परन्तु नैमिपारण्य तीर्थ में तथा पुष्कर, गया, उत्तर कोशल, ऋषभद्वीप, गङ्गाद्वार, कुरुक्षेत्र, हिमालय आदि स्थानों पर सरस्वती के प्रवाहों का वर्णन मिलता है ।

इन वर्णनों से पता लगता है कि, सरस्वती की वह विशाल धारा सूख गयी थी, परन्तु फिर भी कहीं-कहीं उसकी छोटी धाराएँ महा भारत

के काल तक थी। ऐसी सात धाराएँ और सुरेणु नाम की धारा ऋषभद्वीप में तथा एक गङ्गाद्वार में ऐसी कुल नौ धाराओं का जिक्र मिलता है जिनके पृथक्-पृथक् नाम रख लिए गये थे और जो तीर्थ की तरह प्रतिष्ठित थी।※

अब एक प्रश्न हल करने को यह रह गया कि, वेदों में जिस सरस्वती की मुख्य धारा का वर्णन है वह तो पश्चिमाभिमुखी प्रवाहित होकर पश्चिम समुद्र में द्वारका के निकट गिरी थी। तब प्रयाग के त्रिवेणी सङ्गम पर सरस्वती की प्रसिद्धि होने का कारण क्या? क्योंकि सरस्वती की गति पूर्व में प्रयाग तक तो नहीं पायी जाती।

ऐसा मालूम होता है कि महानदी सरस्वती की मुख्य धारा प्लक्ष प्रस्रवण से निकल कर कुरुक्षेत्र के स्थाणु तीर्थ तक बही है जो आज तक

※ देवा वै सत्र मासत, ऋद्धि परिमितं यशस्कामाः। तेऽब्रुवन् यन्न, प्रथमं यश ऋच्छात्, सर्वेषां नस्तन्सहामदिति। तेषां कुरुक्षेत्रं वेदिरासीत् तस्मै खाण्डवो दक्षिणार्द्ध आसीत तूर्घ्नमुत्तरार्द्धः परीणाज्जघनार्द्धः मरव उत्करः तेषां मखं वैष्णवं यश आर्च्छत्। तै०।

कुरुक्षेत्र न्देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनं। कुरुक्षेत्रं वै देव यजनम्। श० प०।

सुप्रभा काञ्चनाक्षी च विशाला च मनोरमा। सरस्वती चौघवती सुरेणुर्विमलोदका। पितामहेन यजता आहूता पुष्करेषु वै। सुप्रभा नाम राजेन्द्र नाम्ना तत्र सरस्वती। आजगाम महाभाग तत्र पुण्या सरस्वती। नैमिषे कांचनाक्षी……… …

आहूता सरितां श्रेष्ठा गययज्ञे सरस्वती। विशालान्तां गदेष्वाहु ऋषयः संशित व्रताः। उत्तरे कोशला भागे पुण्ये राजन् महात्मनः। उद्दालकेन यजता पूर्वं ध्याता सरस्वती। आजगाम सरित् श्रेष्ठा तंदेशं ऋषिकारणात्। मनोरमेति विख्याता…… ‥

है। वहाँ से वह नदी उदयपुर के दक्षिण पश्चिम सिद्धपुर, पटना, मातृ गया, के पास होती हुई कच्छ के निकट द्वारका वाले पश्चिम समुद्र की खाड़ी में जा मिली है। उसकी वह शाखा जो सुरेणु नाम से प्रख्यात है और जहाँ दक्ष ने यज्ञ * किया था प्रयाग में गङ्गा यमुना के सङ्गम पर मिल गयी होगी।

ऋग्वेद के मन्त्रों में जो "सप्तसिन्धु" "सिन्धुमाता" और "सिन्धु रन्या" शब्द आया है उससे ऐसा भी मालूम होता है कि पञ्जाब का प्रसिद्ध सिन्धुनद (अटक) और पञ्जाब की अन्य१ पांच नदियां भी महा नदी सरस्वती में मिल गयीं थीं। यजुर्वेद में भी एक मंत्र (२)

* 'सुरेणु ऋषभे द्वीपे पुण्ये राजर्षि सेवते।
कुरोश्च यजमानस्य कुरुक्षेत्रे महात्मनः॥
आजगाम महाभाग सरित् श्रेष्ठा सरस्वती।
ओघवन्त्यपि राजेन्द्र वशिष्ठेन महात्मना॥
समाहूता कुरुक्षेत्रे दिव्य तोया सरस्वती।
दक्षेण यजता चापि गंगा द्वारे सरस्वती॥
सुरेणुरिति विख्याता प्रस्रुता शीघ्रगामिनी।
विमलोदा भगवती ब्राह्मणा यजता पुनः॥
समाहूता ययौ तत्र पुण्ये हैमवते गिरौ।
एकी भूतास्ततस्तास्तु तस्मिन्स्तीर्थे समागताः॥
सप्त सारस्वतं तीर्थंस्ततस्थत्प्रथितं भुवि।
इति सप्त सरस्वत्योः नामतः परिकीर्तिताः॥
सप्त सारस्वतं चैव तीर्थम्पुण्यं तथा स्मृतम्। (महाभारत)

१' पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यान्ति सस्रोतसः
(२) सरस्वती तु पञ्चधासौदेशेऽभवत्सरित्।
य० अ० ३४ ॥ कं० ११
महो अर्णःसरस्वती प्रचेतयतिकेतुनो। ऋ०मं १।३ सूक्त

मिलता है। पञ्जाब का प्राचीन नाम सारस्वत प्रसिद्ध भी है।

ऋग्वेद में जाति और वर्ण के विषय मे जो कुछ है, उसे हम विस्तार से फिर लिखेंगे। इतना अवश्य कह सकते हैं कि वर्तमान जाति या वर्ण व्यवस्था ऋग्वेद काल मे न थी। प्रत्येक घर का स्वामी स्वयं अपना पुरोहित होता था और वह अपने परिजनों के साथ वेद मन्त्रों द्वारा अग्नि स्थापन और हवन करता था। अग्नि सुलगाना उन दिनों मे वास्तव मे एक बड़ी भारी प्रसन्नता की एवं महत्व पूर्ण और असाधारण बात रही होगी। वस्त्रों की कमी, जंगल का वास, आग्नेय वस्तुओं का अभाव इन सब कारणों से यह बात समझी जा सकती है।

स्त्रियाँ सब कामों में भाग लेती थी। वे स्त्रियाँ जो स्वयं ऋषि या मन्त्र द्रष्टा थीं सूक्तों की व्याख्या करती और होम करती थी। स्त्रियों के लिए कोई बुरे बन्धन न थे। न पर्दा ही था। विदुषी स्त्री विश्ववारा जो कई सूक्तों की ऋषि थी का परिचय म० ५ सू० २८ ऋ० ३ से मिलता है। आज कल के वज्र के समान नियमों से यदि उन सरल और उदार नियमों का मिलान किया जाय तो इस सभ्यता के विकास पर धिक्कार देने की ही इच्छा होती है। कुछ कुमारियों का भी जिक्र हम पाते हैं जिन्हें पिता की सम्पत्ति में भाग मिला था (मं० २ सू० १७ सू० ७) कुछ प्रातःकाल आकर गृह कर्म में लगाने वाली प्रातः काल के समान पवित्र स्त्रियों का भी जिक्र म० सू० १२४ ऋ० ४ में मिलता है। कन्या पति को चुनती थी, इसके प्रबल प्रमाण जहाँ तहाँ मिलते हैं। विवाह की रीतियाँ बहुत उत्कृष्ट थीं। 'कन्यादान' का अधिकार पिता को न था। आगे हम भिन्न-भिन्न विषयों पर ऋग्वेद की सम्मतियों का उल्लेख करेंगे।

ऋग्वेद के देवताओं में सर्व शक्तिमान-व्यापक परमेश्वर कोई सर्वोपरि

देवता माना गया है। परन्तु ऋग्वेद के ऋषिगण प्रकृति से प्रकृति के देवताओं की ओर बढ़े हैं। उनने वह आकाश जो व्यापक और प्रकाशित है, वह सूर्य जो प्रकाश और उष्णता प्रदान करता है, वह वायु जो जीवन दाता है, वे प्रचण्ड जल जो भूमि को उपजाऊ बनाने वाली कृषि को भाती हैं को देवताओं की तरह माना। इनमें से 'द्यु' लगभग यूनानियों का, "जीउस" रोमन्स का, 'जुपिटर का प्रथम अक्षर (जु), सेकसन लोगों का 'टिड' और जर्मनों का 'जिओ' है।

यद्यपि ग्रीस और रोम के देवताओं में बहुत दिनों तक जीउस और जुपीतर प्रधान रहे किन्तु वैदिक देवताओं में 'इन्द्र' ने विशेष स्थान ग्रहण किया। क्योंकि भारत में नदियों की वार्षिक बाढ़, पृथ्वी की उपज, फसल की उत्तमता चमकीले आकाश पर निर्भर नहीं मेघ पर निर्भर थी।

'वरुण' ही ग्रीक लोगों का 'उरेनस' है। यह भी आकाश के ही अर्थों में हैं; परन्तु 'द्यु' से विपरीत। 'द्यु' प्रकाशमान दिन का आकाश और वरुण अंधकार युक्त रात्रि का आकाश। 'मित्र' शब्द भी दिन के चमकीले आकाश के लिए आया है। जिन्दावस्ता का 'मिथ्' शब्द भी यही है। वैदिक विद्वान मित्र और वरुण को दिन और रात बताते हैं। ईरानी लोग 'मिथ्' को सूर्य कहते हैं और 'वरुण' को अन्धकार। जर्मनी के प्रख्यात विद्वान डा० राथ का मत है कि आर्यों और ईरानियों के जुदा होने के प्रथम 'वरुण' दोनों ही का पवित्र देवता था।

वेद में घने काले बादलों को 'वृत्र' नाम दिया गया है। वे बादल जो कभी नहीं बरसते 'वृत्रासुर' हैं। यह पौराणिक कथा है कि यह 'वृत्र' जल को रोक लेता है जब तक कि इन्द्र, वज्र प्रहार न करे। इस प्राकृत घटना पर ऋग्वेद में सुन्दर वर्णन है। इस युद्ध में वृत्र (घने काले बादलों) पर इन्द्र जो वास्तव में जल पूर्ण मेघ है जब वज्र प्रहार

करता है (टकरा कर बिजली चमकाता है) तब जल से नद नदी परिपूर्ण हो जाती है। इस युद्ध में मरुत् देव (आँधी) इन्द्र की बड़ी सहायता करते है और खूब गरजते है।

ईरानी पुस्तकों में यद्यपि 'इन्द्र' नाम नहीं है, किन्तु 'वेरे थ्रघ्न' नाम है जो वास्तव में 'वृत्रघ्न' का अपभ्रंश है। जन्दावस्ता पुस्तक में 'अहि' के 'थ्रैयेतन' द्वारा मारे जाने का उल्लेख है। 'अहि' तो उपर्युक्त 'वृत्र' का ही नाम है और थ्रैयेतन, इन्द्र का।

ऋग्वेद के सूक्तों में 'वरुण' और 'इन्द्र' इन दो महान देवताओं का वर्णन एक दूसरे से बिलकुल भिन्न है। इन्द्र के सूक्तों में बल और शक्ति की विशेषता पायी जाती है और वरुण के सूक्तों में सदाचार के भावों की विशेषता है। इन्द्र एक प्रबल देव है जो सोम पान करता है, योद्धा है, मरुतों की सहायता से अनावृष्टि से युद्ध करता है, असुरों के युद्ध में आर्यों के दल का नेता है और नदियों के तट की भूमि को खोदने में सहायक है।

पूषण गोपों का सूर्य है। विष्णु ने आज कल के हिन्दुओं में बड़ा उच्च स्थान प्राप्त किया है। परन्तु वैदिक देवताओं में वह एक साधारण देवता है और उसका पद इन्द्र, वरुण, सवितृ तथा अग्नि से कहीं नीचा है। इस विष्णु रूप सूर्य के लिए वेद कहता है कि वह तीन पद में—अर्थात् उगते हुये शिरो बिन्दु पर तथा अस्त होते हुए आकाश को पार करता है। इसी को पुराणों ने प्रख्यात वालि छल का रूप दिया है।

'अग्नि' सभी प्राचीन जातियों में आदरणीय वस्तु थी। अग्नि को 'यविष्ठ' अर्थात् छोटा देवता कहा गया है। क्योंकि, वह बारम्बार रगड़ कर निकाली जाती थी। इसी लिए उसे 'प्रमन्थ' भी कहा गया है। यह बात आश्चर्य की नहीं है कि अन्य प्राचीन जातियाँ भी अग्नि की प्रतिष्ठा करती थीं। लैटिन में अग्नि के देवता को 'इग्निस' (Ignis)

और सालवोनियन लोगों में ओग्नि (Ogni) कहते थे। इसी प्रकार 'प्रमन्थ' का नाम 'प्रोमेथिअस' 'भरण्यु' का 'फोरोनस' और 'उल्का' का 'वल्‌केनस' के रूप में पाते हैं।

परन्तु ऋग्वेद की 'अग्नि' पृथ्वी की साधारण अग्नि नहीं, यह वह अग्नि है जो बिजली और सूर्य में थी, और उसका निवास अदृष्ट में था। भृगु ने उसे जाना, मातरिश्वन उसे नीचे लाये और अथर्वन तथा अंगिरा ने उसे पृथ्वी पर मनुष्यों के लिए स्थापित किया। इन प्रवचनों में अग्नि की प्रारम्भिक खोज का महत्व मिलता है।

वेद में वायु ने कम महत्व प्राप्त किया है। वायु के सुक्त बहुत थोड़े हैं। सिर्फ आँधी के देवता 'मरूत्स' को बहुधा स्मरण किया गया है। वे भयानक थे; परन्तु उपकारी थे, क्योंकि अपनी माता पृश्नि (बादलों) के स्तन से बहुत सी वृष्टि दुह लेते थे।

रुद्र भयानक देवता है और वह मरूत्स का पिता है। यास्क और सायन उसे 'अग्नि' का रूप बताते हैं। डा० राय का अभिप्राय इससे भयानक गर्जने वाले आँधी और तूफान से है। यह भी देवता विष्णु की तरह वेद में छोटासा ही देवता है। उसके सम्बन्ध में बहुत कम सूक्त हैं। पौराणिक काल में वह बड़ा महान देवता हो गया है। उपनिषदों में काली, कराली आदि नाम उन भयानक बिजलियों के हैं जो रुद्र (तूफान) के साथ गर्जन तर्जन से आती हैं। श्वेत यजुर्वेद में 'अम्बिका' भी उसमें गिनी गयी है; परन्तु पुराणों में ये सब रुद्र की स्त्रियाँ बन गयी है; परन्तु वेद में एक भी किसी देवी का कहीं नाम नहीं आया है।

अब 'यम' की बात लीजिए। यह भी पुराणों का प्रबल देवता हो गया है। प्रयोग में वह सूर्य का पुत्र कहा गया है-परन्तु ऋग्वेद में यम की कल्पना अस्त होते हुए सूर्य से की गयी है। सूर्य उसी तरह अस्त

होकर लीन हो जाता है जैसे मनुष्य का जीवन समाप्त हो जाता है। ऋग्वेद के अनुसार विवस्वत अर्थात् आकाश यम का पिता है। सरन्यु अर्थात् प्रभात उसकी माता है और यमी उसकी बहिन है।

इस घटना पर ऋग्वेद में एक अद्भुत वर्णन है। यम की बहिन यमी, यम से पति की तरह आलिंगन किया चाहती है। परन्तु यम इसे स्वीकार नहीं करता। यम यमी वास्तव में दिन रात हैं। यद्यपि दिन रात सदा एक दूसरे का पीछा किये रहते है परन्तु उनका समागम तो कभी हो ही नहीं सकता।

ऋग्वेद में यह देवता मृतकों का राजा है। यहाँ तक तो उसका पौराणिक चरित्र मिलता है, परन्तु इसके आगे समानता का लोप हो जाता है। वैदिक यम उस सुखी लोक का परोपकारी देवता है जहाँ पुण्यात्मा मृत्यु के बाद रहकर सुख भोगते हैं और जिनको पितरों के नाम से सम्मानित किया जाता है; किन्तु पौराणिकों का यम भयानक दण्ड देने वाला, बड़ा निष्ठुर, पापियों का कोतवाल है। वेद के सूक्त सुनिए—

१—विवस्वत के पुत्र यम का सम्मान करो, सब लोग उसीके पास जाते हैं। पुण्यवानों को वह सुख के देश मे ले जाता है।

२—यम ने हमें प्रथम मार्ग दिखाया, वह कभी नष्ट न होगा, सब प्राणी उसी मार्ग से जावेंगे, जिन से हमारे पितर गये हैं। (१० । १४)

'सोम' एक नशीली वनस्पति है। किन्तु देखते है कि उसकी भी देवता की तरह स्तुति की गयी है।

जिन विवस्वन अर्थात् आकाश और सरण्यु अर्थात् प्रभात से यम-यमी दो सन्तान हुए उन्हीं से 'अश्विन' यमज भी हुए। ये अश्विन भी यम-यमी की तरह-प्रभात और संध्या से उत्पन्न हुए हैं। ये अश्विन ऋग्वेद में बड़े भारी चिकित्सक माने गये हैं। उन की दयापूर्ण चिकित्साओं का

कई सूक्तों में वर्णन है। ये दोनों 'अश्विन' अपने तीन पहिये के रथ पर प्रतिदिन पृथ्वी-परिक्रमा करते हैं और दुखियों की चिकित्सा करते हैं।

अब एक सुन्दर अलंकार को देखिए जो ऋग्वेद के सूक्त में है—

१—पनिस कहता है—हे सरमा! तू यहाँ क्यों आयी है? यह स्थान बहुत दूर है। पीछे को देखने वाला इस मार्ग से नहीं जा सकता। हमारे पास क्या है? जिसके लिये तू आयी है। तू ने कितनी यात्रा की है। तू ने रसा नदी कैसे पार की?

२—सरमा कहती है मैं इन्द्र की भेजी आयी हूँ। हे पनिस! तुमने बहुत से पशु छिपा रखे हैं, मैं उन्हें लूंगी। जल मेरा सहायक है। मैं रसा पार कर आयी हूँ।

३—पनिस—वह इन्द्र कैसा है जिसकी भेजी तू दूर से आती है। वह किसके समान दीख पड़ता है। (परस्पर) इसे आने दो हम इसे प्रेम से ग्रहण करेंगे। इसे पशु दे देंगे।

४—मैं किसी को ऐसा नहीं देखती जो इन्द्र को जीत सके; वह सब को जीतने वाला है। बड़ी-बड़ी नदियाँ उसके मार्ग को नहीं रोक सकतीं। हे पनिस! तुम निस्सन्देह इन्द्र से वध किये जाओगे।

५—पनिस—हे सुन्दरी! तुम बड़ी दूर से—आकाश से—आयी हो, हम बिना झगड़ा किये तुम्हें पशु दिये देते हैं। दूसरा कौन इस तरह दे देता? हमारे पास बड़े तीव्र हथियार है।

६—पनिस—हे सरमा! तुम्हें इन्द्र ने धमकाने को भेजा है। हम तुम्हें अपनी बहिन की तरह स्वीकार करते हैं। तुम लौटो मत, हम तुम्हें पशुओं में से एक भाग देंगे।

७—सरमा—तुम कैसे भाई बन्धु का सम्बन्ध निकालते हो? इन्द्र और आङ्गिरस यह सब बात जानते हैं। जब तक सब पशु न प्राप्त हों मैं उन पर दृष्टि रखती हूँ, तुम दूर भाग जाओ। (ऋ० १०, १०८)

इस मनोरंजक कथानक में रात्रि के अन्धकार के बाद पूर्ण प्रकाश के फैलने का रूपक है। प्रकाश की किरणों की उन पशुओं से समानता की गयी है जिनकी खोज इन्द्र कर रहा है। वह सरमा को खोज में भेजता है, यह सरमा 'उषा' है। सरमा उस बिलु अर्थात् गह्वर को पा लेती है जहाँ अंधकार एकत्र था। पनिस ही अंधकार है। वह उसे ललचाता है; परन्तु सरमा नहीं बहकती। वह इन्द्र के पास लौट आती है। वह प्रकाश करता है।

मैक्समूलर का अनुमान है कि ट्राय का युद्ध इसी वैदिक कथा के आधार पर लिखा गया है। यह वह युद्ध है जो प्रतिदिन पूर्व दिशा में सूर्य द्वारा हुआ करता है और जिसका दीप्तिमान धन प्रतिदिन सन्ध्या समय पश्चिम दिशा से छीन लिया जाता है। मैक्समूलर साहब के मत से इलिअन-ऋग्वेद का बिलु है। पेरिस वेद का पनिस है जो कि ललचाता है और हेलेना सरमा है, जो वेद में लालच को रोकती है, परन्तु यूनानी पुराण में ललचा जाती है।

अब 'आदित्य' की बात सुनिए, जो अदिति का पुत्र है। अदिति का अर्थ–अभिन्न, अपरिमित और अनन्त है और जर्मन के प्रख्यात डाक्टर के मत में इस शब्द का अर्थ 'अनादि और अनिवार्य' ईश्वरीय प्रकाश है। इस अनन्त में वह भाव है जो दृश्य जगत् अर्थात् पृथ्वी-मेघ और आकाश से भी परे का द्योतक है। ऋग्वेद में आदित्यों का स्पष्ट विवरण है। मं० २। सू० २७ में वरुण-मित्र के सिवाय अर्यमत, भग, दक्ष और अंस का भी उल्लेख है। मं० ६ सू० ११४ ता० मं० १० सू० ७२ में आदित्यों की संख्या ७ कही गयी है। इन्द्र अदिति का पुत्र है और सवितृ-सूर्य भी आदित्य माना गया है इसी भाँति पूषण और विष्णु भी जो कि सूर्य के ही नाम हैं, आदित्य हैं। आगे चलकर जब वर्ष १२ मासों में बाटा गया तब आदित्यों की संख्या भी १२ स्थिर

हो गयी। भाष्यकारों ने सवितृ ऊगते हुये या विना ऊगे सूर्य को कहा है तथा सूर्य प्रकाशित सूर्य को। सूर्य की सुनहरी किरणों की उपमा सुनहरी हाथों से दी गयी है। पुराणों में तो सवितृ का एक हाथ यज्ञ में जल गया तो वहाँ सोने का लगाया गया, ऐसा वर्णन है; किन्तु यही कथा जर्मन पुराणों में कुछ रूपान्तर से है। वहाँ सूर्य का हाथ 'बाघ खा गया' ऐसा वर्णन है।

इसी 'सवितृ' का वह एक मात्र प्रसिद्ध सूक्त है जो उत्तर काल के ब्राह्मणों का पवित्र गायत्री मन्त्र है—

'तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहिधियो योनः प्रचोदयात्।' डा० विल्सन ने इसका अर्थ किया है—

"हम लोग उस दिव्य सवितृ के मनोहर प्रकाश का ध्यान करते हैं जो हम लोगों को पवित्र कर्मों में प्रवृत्त करता है।

(३-६२-१०)

बृहस्पति—या ब्रह्मणस्पति ऋग्वेद में साधारण देवता है; परन्तु उपनिषदों में कदाचित वही महान् 'ब्रह्मन्' की उपाधि पाने वाला है। वही बौद्धों के मत में उपकारी ब्रह्मा तथा पौराणिकों का जगत रचियता 'ब्रह्मा' है। ये वैदिक ब्रह्मा, वैदिक विष्णु और वैदिक रुद्र, पौराणिक त्रिदेव के रूप में उसी तरह अथाह हो गये हैं जैसे गंगोत्तरी की पवित्र क्षीण धारा बंगाल की खाड़ी के निकट हो गयी है।

ऋग्वेद में देवियों के स्थान पर यदि कुछ है तो-उषस, और 'सरस्वती'। 'सरस्वती' नदी थी जो पीछे वाणी की देवी बनी। उषस या प्रभात का जैसा मधुर और कवित्व मय वर्णन वेद में है वैसा और किसी का नहीं। सुनिए—

२०—हे अमर उषा ! तू हमारी प्रार्थना की अनुरागिनी है, हे तेजस्विनी तू किस पर दयालु है ?'

२१—हे नानारंगों की चमकीली उषा ! दूर तक तेरा विस्तार है। तेरा निवास कहाँ है ?

२२—हे आकाश की पुत्री ! इन भेटों को स्वीकार कर और हमारे सुखों को चिरस्थायी कर। (१—३०)

७—आकाश की वह पुत्री जो युवती है, श्वेत वस्त्र धारण किये है और सारे संसार के धन की स्वामिनी है, वह हमें प्रकाश देती है, हे शुभ्र उषा ! हमें यहाँ प्रकाश दे।

८—जिस मार्ग से बहुत प्रभात बीत गये हैं और अनन्त प्रभात आने वाले हैं उसी मार्ग से चलती हुई तेजस्विनी उषा अन्धकार को दूर करती है और जो लोग मृतकों की नाँई नींद में बेखबर पड़े हैं उन सब को जीवित करके जगाती है।

१०—कब से उषा का उदय होता है और कब तक होता रहेगा। आज का प्रभात उन सबके पीछे है जो बीत गये हैं और आगामी प्रभात आज के चमकीले उषा का पीछा करेगा।

(२ । ११३)

११—अपनी माता के द्वारा सिंगारी हुई दुलहिन की नाईं शोभायमान होकर तू प्रकट हुई। हे शुभ उषे ! इस आच्छादित अन्धकार को दूर कर। तेरे सिवा और कोई इसे दूर नहीं कर सकता।

(१ । १२३)

यह उषा, प्राचीन-जातियों में भी बहुत प्रसिद्ध है। यूनानी भाषा में 'ऊषस' को ' इओस (Eos) और लैटिन में अरोरा (Aurora) के नाम से पुकारा गया है। 'अर्जुनी' वही है जो यूनानियों के यहाँ अर्जिनोरिस (Argynoris) है। 'वृसया' यूनानी बिसेइस (Brseis) और 'दहना' यूनानी 'दफने' (Dophne) है। 'सरमा' यूनानी हेलेना (Helena) है।

सरस्वती, नदी है। प्राचीन काल में आदि आर्य उसी के तट पर चिरकाल तक रहे हैं। स्वाभाविकतया वह देवी, सूक्तों की देवी बन गयी। वही पौराणिक काल में वाणी की देवी बन गयी है। हम आगे इस का उल्लेख करेंगे।

वैदिक देवताओं के उपर्युक्त विवरण से विद्वान पाठक यह समझ सकेंगे कि ज्यों ज्यों आर्यों ने प्रकृति से आदि काल में परिचय प्राप्त किया त्यों त्यों वे उसके गुण गान एक सच्चे कवि की तरह करने लगे। उपर्युक्त कल्पानाओं से इस में सन्देह नहीं रहता कि वे लोग कैसे सरल और सदाचारी रहते रहे हैं। इन सूक्तों में यह अद्भुत बात है कि कोई भी ऐसा दुष्ट प्रकृति का देवता नहीं बताया गया है। न कोई नीच या हानि कर बात पायी जाती है। अतः यह बात स्वीकार करने में क्या आपत्ति हो सकती है कि इन सूक्तों से एक विस्तृत नीति की शिक्षा प्रकट हो रही है।

ऋग्वेद में किसी देवता की पूजा, मंदिर या उपासना का ज़रा भी उल्लेख नहीं है। उससे यही प्रकट होता है कि गृहपति अपने घरों में होमाग्नि प्रगट करता और धन-धान्य-परिवार की सुख कामना से इन वेदमन्त्रों द्वारा उन देवताओं का यशोगान करता था। वे ऋषि जो ऋग्वेद में हैं पौराणिक पाखण्डी और बनावटी ऋषि नहीं हैं। वे ऐसे साँसारिक मनुष्य थे जिनके पास पशु के और अन्न के रूप में बहुत सा धन रहता था। जिन के बड़े बड़े घराने थे, तथा काले असभ्यों से आर्यों की रक्षा के लिए समय-समय पर हलों को एक ओर रख भाले और तलवार तथा धनुषबाण लेकर युद्ध करते थे।

यद्यपि योद्धा-पुरोहित और कृषक, ये तीनों ही गुण प्रायः प्रत्येक ऋषि में होते थे; परन्तु ऋग्वेद के उत्तर काल के सूक्तों में हम ऐसे पुरोहितों को देखते हैं जो अन्यत्र भी व्यवसाय की दृष्टि से पौरोहित्य

करके दक्षिणा लेने लगे थे। इसका वर्णन हम अन्यत्र करेंगे। कुछ घराने सूक्तों के विशेषज्ञ–मन्त्र द्रष्टा–की तरह दीख पड़ते हैं।

इन ऋषियों में सर्वश्रेष्ठ "विश्वामित्र और वशिष्ठ" हैं। डाक्टर म्योर ने अपनी पुस्तक 'संस्कृत टेक्स्ट्स' के प्रथम भाग में इन ऋषियों की बहुतसी कथाओं का संग्रह किया है। इन दोनों ऋषियों में विद्वेष हो गया था। विद्वेष का वास्तविक कारण एक दूसरे के यजमानों की छीना झपटी थी, तथा विश्वामित्र योद्धा ऋषि से पुरोहित ऋषि बन गये थे और भृगुओं के संबंधी तथा पक्षवाले थे। इनने वशिष्ठ के यजमान सुदास के यहाँ वशिष्ठ की गैरहाजिरी में यज्ञ कराया था और वहाँ वशिष्ठ पुत्रों ने पहुँच कर विश्वामित्र को खूब आड़े हाथों लिया था। इस प्रकार इन दोनों में खासा वैर होगया था। ऋग्वेद के मंडल ३ सू० ५३ में देखिए वशिष्ठ को कैसी खरी खरी सुनायी गयी हैं।

"नाशकर्त्ता की शक्ति नहीं देख पड़ती। लोग ऋषियों को इस तरह दुरदुराते है जैसे वे पशु हों। बुद्धिमान लोग मूढ़ों की हँसी करने पर उतारू नहीं होते। वे घोड़े के आगे गधे को नहीं चलने देते।" (२३)

"इन भारतों ने (वशिष्ठों के साथ) हेल मेल करना नहीं सीखा। द्वेष करना सीखा है। वे उनके सन्मुख घोड़े दौड़ाते हैं धनुष से युद्ध करते हैं।" (२४)

वशिष्ठ ने मं० ७ सू० १०४ में उन कुवाच्यों का जवाब दिया है। "सोम दुष्टों को शुभ नहीं जो अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हैं। वह उन झूठों को नष्ट करे, हम दोनों तो इन्द्र के आधीन हैं (१३)

"यदि मैं यातुधान होऊँ या मैंने किसी को दुःख दिया हो तो मैं अभी मर जाऊँ या जिसने मुझे झूठमूठ यातुधान कहा हो वह अपने इन सम्बन्धियों के बीच मे उठ जाय। (१५)

"यदि मैं यातुधान नहीं, तो जिसने मुझे यह गाली दी उस अधम

पर इन्द्र का वज्र गिरे।" (१६)

इस वैदिक काल के द्वेष भाव को पुराणों ने अतिरंजित कर दिया है। पौराणिक गाथाओं में विश्वामित्र को क्षत्रिय से ब्राम्हण होना बतायागया है। पर ऋग्वेद में न वे ब्राम्हण हैं न क्षत्रिय। वे प्रथम योद्धा ऋषि और फिर पुरोहित ऋषि हैं। विश्वामित्र के बहुत से श्रेष्ठ सूक्त ऋग्वेद में हैं और आधुनिक ब्राम्हणों का वह सावित्री सूक्त जो गायत्री कहा जाता है विश्वामित्र का ही है। उनका जन्म क्षत्रियकुल में मानकर महाभारत, हरिवंश और विष्णुपुराण में उनके ब्राम्हण हो जाने की अद्भुत कथा लिख दी है। इसके शिवा हरिश्चन्द्र की कथा में उन्हें क्रोधी, क्रूर, निष्ठुर एवं लोभी ऋषि के तौर पर दिखाया गया है।

त्रिशंकु राजा सदेह स्वर्ग जाना चाहता था। उसने वशिष्ट से कहा। वशिष्ट ने उसके विचार को असम्भव बताया, पर विश्वामित्र ने पूर्ण संभव कहा। वशिष्ट ने क्रुद्ध होकर उसे चाण्डाल कर दिया; पर विश्वामित्र ने उसे यज्ञ कर स्वर्ग भेज दिया। इन्द्र ने उसे स्वर्ग से ढकेल दिया; तब विश्वामित्र ने उसे वहीं रोक दिया और एक और ही स्वर्ग की सृष्टि करने लगे। यह पौराणिक गाथा है, इस नमूने की बहुत घड़ली गयी हैं, जिनमें काल-क्रम की परवा भी नहीं की गयी है। पचासों पीढ़ियों तक ये दोनों ऋषि और इनकी संतान लड़ते झगड़ते रहे हैं।

अंगिरा ऋषि, जो ऋग्वेद के नवम मंडल के ऋषि हैं, के विषय में विष्णुपुराण (म० ४। २। २) में लिखा है कि नभाग के नाभाग उसके अम्बरीप, उसके विरूप उससे पृप दश्व उससे रथीनर हुए। यह अंगिरा कुल है जो क्षत्रिय हो गया था।

वामदेव और भारद्वाज को मत्स्य पुराण (अ० १३२) में अंगिरा वंश की उस शाखा में बताया गया है जो ब्राम्हण हो गयी थी।

गृत्समिद् के विषय में सायण का मत है कि वे प्रथम अंगिरा कुल

के थे, पीछे भृगुवंश के हो गये, परन्तु विष्णु पुराण और वायु-पुराण ने गृत्समिद को सैनिक का पिता बताया है, जिसने वर्णों का निर्माण किया। (वि० ४-८)

कण्व को विष्णुपुराण (४-१९) मे और भागवत (४-२०) में पुरु की सन्तान लिखा है; जो क्षत्रिय थे, पर वे ब्राम्हण माने जाते थे। अजमीध से कण्व और उससे मेधातिथि उत्पन्न हुए जिनसे कण्वनय (कान्यकुब्ज ?) ब्राम्हण उत्पन्न हुए। (वि० पु० ४—१९)

अत्रि को विष्णुपुराण मे पुरुरवा का दादा कहा गया है (वि० ४-६) मत्स्यपुराण (अ० १३२) मे ९१ वैदिक सूक्तकारों का वर्णन दिया गया है। परन्तु वास्तव में आधुनिक पुराणों का वर्णन इन अति प्राचीन ऋषियों के सम्बन्ध में उतना प्रामाणिक नहीं हो सकता कि जिस पर बिल्कुल निर्भर रहा जाय। पुराणो ने ऋषियों के तीन भेद किये हैं—देवर्षि–जैसे नारद, ब्रम्हर्षि-जैसे वशिष्ठ, राजर्षि–जैसे जनक। परन्तु निश्चय ही वैदिक ऋषि इन विभागों से पृथक थे। तब ये श्रेणियाँ बनी ही न थी। इन तमाम वर्णनों से हम ऋग्वेद में इन वस्तुओं को प्राप्त करते हैं—

१ नदियाँ—जो लगभग २५ हैं। जिनमें तीन को छोड शेष सब सिन्धु नद की शाखाएँ हैं। १ वितस्ता, २ असिक्नि (चन्द्रभागा) उपरुष्णी (रावी), ४ विपाट, ५ शुतद्री (सतलज), ६ कुभा, ७ सुवास्तु ८ क्रमु, ९ गोमती, १० गंगा, ११ जमुना, १२ सरस्वती, १३ सिन्धु, १३ दृषद्वती, १४ रसा, १५ सरयू, १६ अञ्जसी, १७ कुलिशी, १८ वीर पत्नी, १९ सुशोमा, २० मरुद् वृधा, २१ आर्जीकीया (विपाशा), २२ तृष्टामा, २३ सुसर्तु, २४ श्वेती, २५ मेहत्नु।

२—पर्वत १—हिमवन्त (हिमालय) २—मूजवत् (जहां सोम उत्पन्न होता है, और जो काबुल के पास काश्मीर से दक्षिण पश्चिम में है) ३—त्रिक कुत ४—नावाप्रभ्रंशन

३—

४ पशु—सिंह, गज, वृक (भेड़िया), वराह, महिष, ऋक्ष, वानर, मेष (मेढा), अजा (बकरा), गर्दभः, श्वा (कुत्ता), गौः, ऊष्ट्र, ।

५ पक्षी—हंस, क्रौञ्च, चक्रवाक, मयूरी, प्रतुद्,

६ खनिज—स्वर्ण, अयः (लोहा), रजत (चाँदी),

७ मनु जाति वर्ग—गान्धार, मूजवत, पञ्चवर्ग, पञ्चजन, पूरवः, तुर्वशाः, यदवः, अनवः, दुह्यवः, मत्स्याः, सृञ्जय, उशीनराः, चेदयः क्रिवयः, भरता, क्रीवयः

८ गहने—कटक, कुण्डल, ग्रैवेय, नूपुर, आदि।

अब केवल एक बात और कहकर हम इस पूज्य ग्रन्थ की चर्चा समाप्त करते हैं-वह बात है ऋषि दयानन्द और वेद के सम्बन्ध में। सायण के बाद ऋग्वेद पर ऋषि दयानन्द ही का आर्यभाष्य महत्व पूर्ण है। इस प्रबल महापुरुष में विशेषता यह है कि विशुद्ध संस्कृत का विद्वान होते हुए भी अत्यन्त स्वच्छन्द बुद्धि और नवीन विवेक से इसने वेदों को देखा, समझा और समझाया है। ऋषि दयानन्द ब्रह्मवादी मत के हैं और उन्होंने वेदों के वैज्ञानिक अर्थ किये हैं। स्वामी दयानन्द वेदों का काल १ अरब ९६ करोड़ ८ लाख ५२ हजार ९ सौ ८४ मानते हैं। जो कि वास्तव में उनके मत से सृष्ट्युत्पत्ति का काल है।

अब उनके मतानुसार ऋग्वेद के विषय-स्थलों का हम संकेत मात्र यहाँ देना उचित समझते हैं—

ब्रह्म विद्या और धर्म आदि—१ । ६ । १५ । ५, १ । २ । ७ । ५, ८ । ८ । ४९ । २-३-४, ।

सृष्टि विद्या—८ । ७ । १७, ८ । ७ । ३,

पृथ्वी आदि का भ्रमण—८ । २ । १० । १, ६ । ४ । १३ । ३,

गणित—८ । ७ । १८ । ३,

ईश्वर स्तुति—१ । ३ । १८ । २,

उपासना—४ । ४ । २४ । १, १ । १ । ११ । १

मुक्ति—८ । २ । १ । १,

नौ विमान आदि विज्ञान—१ । ८ । ८ । ३,४, १ । ८ । ८ । ५, १ । ८ । ६ । १, १ । ३ । ४ । १, १ । ३ । ५ । ७, १ । ३ । ३४ । ८, १ । ६ । ६ । ४, १ । ३ । ३४ । ७, २ । ३ । २३ । ४७, २ । ३ । २४ । ४८,

तार विद्या—१ । ८ । २१ । १०,

पुनर्जन्म—८ । १ । २३ । ६-७,

नियोग—७ । ८ । १८ । २, १० । १८, ८ । ८ । ५ । २१ । २०,

राजधर्म—३ । २ । २४ । ६, १ । ३ । १८ । २,

प्रायः सभी अर्वाचीन प्राचीन भाष्यकारों का ऋषि दयानन्द ने खण्डन किया है, खास कर सायण और महीधर का; परन्तु आश्चर्य है कि शतपथ आदि *ब्राह्मणों के विषय में उनने बिलकुल मौन साधन* किया है।

तीसरा अध्याय

यजुः, साम और अथर्वण

यजुर्वेद को सायण और महीधर ने पूर्ण यज्ञ-परक स्वीकार किया है। ऋग्वेद में हमें यज्ञकर्ताओं के भिन्न-भिन्न नाम जहाँ तहाँ मिलते हैं, जो यज्ञ में भिन्न-भिन्न कार्य किया करते थे। अध्वर्यु को यज्ञ में भूमि नापनी, यज्ञकुण्ड निर्माण करना और लकड़ी-पानी की व्यवस्था करनी पड़ती थी। गायन का कार्य उद्गाता करता था। इन लोगों को ऋग्वेद में 'यजुष्, और 'सामन्' के नाम से पुकारा गया है। अवश्य ही ऋग्वेद के ये सूक्त जिनमें इन बातों का उल्लेख है उत्तर कालीन हैं और उस सभ्यता से बहुत पीछे की सभ्यता का उल्लेख करते हैं जो उन सूक्तों से प्रतिध्वानित होती है जिसमें इन्द्र,मित्र, वरुण और उषादेवी का वर्णन है।

कृष्ण यजुर्वेद, तित्तिरि के नाम से तैत्तिरीय संहिता कहाता है। इस वेद की आत्रेय प्रति की अनुक्रमणी में यह लिखा है कि यह वेद वैशम्पायन से यास्क, को प्राप्त हुआ फिर यास्क से तित्तिरि को, तित्तिर से उख को और उख से आत्रेय को। हम तो इस परम्परा-वर्णन का यह अभिप्राय निकालते हैं कि अब जो हमें यजुर्वेद की प्रति प्राप्त है वह आदि प्रति नहीं।

शुक्ल यजुर्वेद याज्ञवल्क्य वाजसनेय के नाम से वाजसनेयी संहिता कहाता है। याज्ञवल्क्य विदेह के राजा जनक की सभा के प्रसिद्ध पुरोहित थे और उस नाम के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उक्त पुरोहित ने इस नई शाखा को प्रकाशित किया।

इन दोनों यजुर्वेदों की प्रतियों में अन्तर यह है कि कृष्ण यजुर्वेद में तो यज्ञ सम्बन्धी मन्त्रों के साथ ही साथ उनकी व्याख्याएँ भी दे दी

हैं। साथ ही उनके आगे यज्ञ सम्बन्धी आवश्यक वर्णन भी हैं; परंतु दूसरी संहिता में अर्थात् शुक्ल यजुर्वेद में केवल मन्त्र ही दिये गये हैं और उनकी व्याख्या तथा यज्ञ वर्णन अतिविस्तार से अलग एक ब्राह्मण में दिया गया है। इसी ब्राह्मण का नाम शतपथ है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि इस यज्ञ प्रेमी पुरोहित ने यजुर्वेद की पुरानी परिपाटी मे एक संशोधन किया, कुछ परिवर्तन भी किया और उसकी पद्धति तथा शिष्य परम्परा ही पृथक् चल गयी तथा उसका एक नवीन सम्प्रदाय बन गया।

शुक्ल यजुर्वेद में ४० अध्याय हैं और कृष्ण यजुर्वेद १८ ही अध्याय का है। शतपथ ब्राह्मण में उन १८ अध्यायों के मन्त्र पूरे नौ खण्डों में सम्पूर्ण किये गये हैं और यथा क्रम उनपर टिप्पणी दी गयी है। इस लिए इसमे संदेह नही कि ये १८ हों अध्याय प्राचीन कृष्ण यजुर्वेद के उद्धरण है और संभवतः इन्हीं का संकलन या संस्कार याज्ञवल्क्य ने नये रूप में किया शेष ७ अध्याय प्रायः याज्ञवल्क्य के पीछे तक भी संकलित होते रहे प्रतीत होते है और अन्त के १५ अध्याय जो फुटकर (परिशिष्ट वा खिल) कहे जाते हैं प्रत्यक्ष ही उत्तर कालीन है।

यजुर्वेद की १०१ शाखाएँ हैं। ये शाखाएँ शैली भेद, अध्यापन भेद और देश भेद के कारण हो गयी हैं। इन शाखाओं में बहुतसी लुप्त भी हो चुकी हैं। गुरु से पढ़कर जिस शिष्यने अपने देश में जाकर जिस ढंग से अपने शिष्यों को पढ़ाया और उसमें कुछ न कुछ भेद पड़ गया, तो वह शाखा उसी अध्यापक के नाम से प्रसिद्ध हो गयी। कुछ शाखाओं में परस्पर इतना भेद है कि यजुर्वेद के दो नाम ही पड गये हैं, जैसा कि ऊपर कहा गया है, श्वेत (शुक्ल) यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता बहुत प्रसिद्ध है। वाजसनेय ऋषि ने भिन्न-भिन्न देश के १७ शिष्यों को यजुर्वेद पढ़ाया था। उन १७ हों के नाम से १७ शाखाएँ हो गयीं। शाखा-भाष्यकारों ने

इनका अवलम्ब लिया है। इनको मूल यजुर्वेद का शुद्ध स्वरूप माना गया है। इसी शाखा का ब्राह्मण भी उपलब्ध होता है।

षडशीतिः शाखा यजुर्वेदस्य-चरणव्यूह ?

सामवेद के सम्बन्ध में कोई महत्वपूर्ण बात का पता नहीं लगता। कुछ ऋचाओं को छोड़ कर प्रायः उसकी सभी ऋचाएँ ऋग्वेद में भी पायी जाती हैं। यह बहुत कुछ सम्भव है कि शेष ऋचाएँ भी ऋग्वेद की हों, और अब उन्हें भूल गये हों, अन्ततः यह तो कहा ही जा सकता है कि सामवेद, ऋग्वेद से गायन कार्य के लिये स्वर ताल बद्ध करके संग्रह किया गया है। इसके सिवा हमें और कोई कारण प्रतील नहीं होता। इस वेद के कुछ मन्त्र यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में भी देखने को मिलते हैं।

अथर्ववेद का उल्लेख हमें विलकुल आधुनिक काल में मिलता है। मनुस्मृति तथा अन्य स्मृतियां भी प्रायः तीन वेदों का ही उल्लेख करतीं हैं। कौपीतिक ६। १०। ऐतरेय ब्राम्हण ५। ३२, शतपथ ब्राम्हण ११। ५। ८, १४। ६। १०। ६ छान्दोग्य उपनिषद् ४। १७,। ऐतरेय आरण्यक ३। २। ३, बृहदारण्यक १। ५, में तीनोवेदों का नाम उल्लेख करके इस ग्रन्थ की अथर्वाङ्गिर नामक इतिहास में गिनती की है। इस ग्रन्थ को वेद माने जाने का उल्लेख अथर्ववेद ही के ब्राम्हण और उपनिषदों में मिलता है। हम उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर कह सकते हैं कि मसीह से लगभग १५०० वर्ष पूर्व यह ग्रन्थ अथर्वाङ्गिर इतिहास के तौर पर प्रकट हो रहा था। और कभी-कभी इसे अथर्वन् वेद कहकर स्वीकार करने को पेश किया जाता था परन्तु ईस्वी शताब्दि के पीछे तक भी वह वेद नहीं हो पाया था। गोपथ ब्राम्हण तो चौथे वेद की आवश्यकता को तर्क द्वारा सिद्ध करने की चेष्टा करता है। वह कहता है गाड़ी के चार पहिये होते हैं, पशु भी विना चार टाँगों के नहीं चल सकता, इसलिये यज्ञ भी विना चार वेदों के नहीं हो सकते। इससे

तो यह स्पष्ट है कि गोपथ के समय तक भी अथर्ववेद नहीं स्वीकार किया गया था। एक स्थान पर वह स्पष्ट कहता है कि अथर्व कैसे वेद बन गया।

अथर्व और अंगिरा का वर्णन और नाम पुराणों में हमें दीख पड़ता है। यह सम्भव है इन्हीं दो विद्वानों ने इस ग्रन्थ का संकलन किया हो। इस वेद में २० काण्ड है, जिनमें लगभग ६ हजार ऋचाएँ है। इसका छठा भाग गद्य मे और शेष का ६ अंश ऋग्वेद के प्रायः दसवें मण्डल के सूक्तों से मिलता है। उन्नीसवाँ काण्ड एक प्रकार से पहिले १८ काण्ड का परिशिष्ट है और बीसवे काण्ड में ऋग्वेद के उद्धरण है।

यह ग्रन्थ चाहे जितना आधुनिक हो, पर इसमें हम एक प्रबल वैज्ञानिक वाद को देखते है। अनेक रोगों के वर्णन और उनको नष्ट करने वाली अनेक औषध के गुण, नाम, रूप, रेखा, कीटाणु शास्त्र के गहन विषय जो यूरोप को अब प्रतीत हुए हैं, तथा दीर्घायु होने, धन प्राप्त करने और नीरोग रहने की बहुत सी महत्व पूर्ण बातें इसमें पायी जाती हैं।

चौथा-अध्याय
वेदों के महत्त्वपूर्ण वर्णन

श्वासोच्छ्वास-विज्ञान—श्वास और उच्छ्वास ये दो वायु हैं। भीतर जानेवाला श्वास है वह बल देता है और जो बाहर आनेवाला उच्छ्वास है वह दोषों को दूर करता है। इस प्रकार दोष दूर करने और बल बढ़ाने के कारण प्राणी जीवित रहते हैं।

ऋ० १० । १३७ । २

शुद्ध वायु—शुद्ध वायु रोग दूर करने वाला औषध है। वही हृदय और मन को शान्ति देनेवाला है। आनन्द प्रसन्नता उसी से प्राप्त होती है। दीर्घायु भी उसी से प्राप्त होती है। ऋ० १० । १८ । १

दीर्घायु रहस्य—हे प्राण नीति! घी पीकर, प्रकाश में रह कर और सूर्य के दर्शन कर के हम तेरी रक्षा करें। हमारे मन दीर्घ जीवन के लिये दृढ़ हों ऋ० १० । ५९ । ५

दूध पीना—गाय का ताजा दूध उत्तम है। जो पकाने पर पक्व होता है। जो नवीन होता है वही पदार्थ अच्छा होता है। दोपहर के भोजन के साथ दही खाना और उत्तम पुरुषार्थ करना चाहिए।

ऋ० १० । १७८ । २

दान—जो दुर्बल, रोगी भिखारी को अन्न देता है वही सच्चा भोजन करता है। उसके पास योग्य समय पर दान के लिए अन्न की कमी नहीं रहती और विपत्ति से उसकी रक्षा होती है।

ऋ० १० । ११७ । ३

तीन गुण—मित्रता, न्याय और वीरता ये तीन गुण मनुष्य में होने चाहिए। ऋ० १० । १८५ । १

दरिद्रता का नाश करो—हे धन हीन विरूप कुरूप और सदा रोने वाली दरिद्रा ! निर्जन पर्वत पर जाओ। नहीं तो वज्र के समान दृढ अन्तः-करण वाले मनुष्य के पराक्रम से हम तेरा नाश कर देंगे।

ऋ० १०।१५५।१

कारीगर दरिद्रता का नाश करता है—जो कारीगर है वह दरिद्रता रूपी समुद्र को सरलता से पार करता है। इसलिए कारीगर बनो।

१०।१५५।३

लोहे का कारबार—जब लोहे के कारखाना विशेष पुरुषार्थ के साथ खोले जावेंगे तब ऐश्वर्य का शत्रु दारिद्र्य पानी के बुल-बुलों की तरह स्वयं ही नष्ट हो जायगा।

ऋ० १०।१५५।४

जुआ खेलने का परिणाम—यह मेरी स्त्री मुझे कष्ट नहीं देती थी, न कभी क्रोध करती थी तथा अपने परिजनों के साथ मुझसे प्रेम करने वाली थी, जुए के कारण मुझे वह भी गंवानी पड़ी।

ऋ० १०।३४।२

जिसके ज्ञान और धन का नाश जुआ करता है उसकी स्त्री का दूसरे ही उपभोग करते हैं। माता-पिता और भाई उसके विषय में कहते हैं कि हम इसको नहीं जानते इसे बांधकर ले जाओ।

ऋ० १०।३४।४

ये जुए के पासे नीच होने पर भी ऊँचे हैं। इनके हाथ न होने पर भी हाथ वालों को हराते हैं। चौथी पर फेंके हुए ये पासे जलते हुए अंगारे हैं, जो स्वयं शीतल होने परभी हृदय को जलाते हैं।

ऋ० १०।३४।९

तब जुआरी दूसरों की युवती पत्नियों को, महल अटारियों को और ऐश्वर्य को देखता है, तब उसे बड़ा सन्तोष होता है। जो जुआरी प्रातः काल सजे घोड़ों की जोड़ी पर सवार था वही पापी अग्नि तापकर रात काटता है।

ऋ० १० । ३४ । ११

पुरुषार्थ कर्म—इस लोक में कर्म करते हुए सौ वर्ष जीवे। यही तेरे लिए एक मार्ग है। कर्तव्य पर डटे रहने से मनुष्य दोष में लिप्त नहीं होता।

य० ४० । २

ईश्वर की प्रतिमा नहीं है—जिसका महान नाम प्रसिद्ध है उसकी कोई प्रतिमा नहीं है य० ३२।३।

उससे प्रथम कुछ न था। उसने सब भुवनों को बनाया। वह प्रजापति, प्रजा के संग रहने वाला, और सोलह कला युक्त तीनों तेजों को धारण करता है। य० ३२।५

३३ देवता—जिसके अंगों में ३३ देव सेवा करते हैं उसे केवल ब्रह्म ज्ञानी ही जान सकता है। अ० १०।७।२७

राष्ट्र में वर्णों की उन्नति—हे ब्राह्मण, हमारे राज्य में ब्राह्मण, ज्ञान युक्त और क्षत्रिय शूर हों। दुधार गाएँ बैल व चपल घोड़े और विद्वान् स्त्रियाँ हों, यज्ञ कर्त्ता का पुत्र शूर विजयी और सभा में चमकने वाला हो, योग्य समय पर मेह बरसे। वनस्पतियाँ फलों से भरपूर हों।

य० २२ । २२

कान छेदना—लोहे की सुई से जैसे अश्विनी कुमारों ने दोनों कानों को छेदा था, जो कि वह प्रज्ञा सूचक था, वैसा ही तुम भी वेधन करो।

अ० ६ । १४२

वाणिज्य—हे देवो ! मूलधन से धन की इच्छा करने वाला मैं जिस धन से व्योपार चलाता हूँ, वह मेरा धन बहुत होवे, कम न हो।
अ० ३ । १९

जिस धन से मै व्यापार करता हूँ उसके द्वारा उससे अधिक की मैं कामना करता हूँ ।
अ० ३ । १५

कबूतर की दूत का काम—इशारे से उड़ाया हुआ कबूतर बड़े भाग्य से यहाँ आया है । हम उसका सत्कार करें और उसे लौटाने की तैयारी करें ।
अ० १० । ११५ । १

दूध घी—गौओं का दूध मैं काढ़ता हूँ । घी से बल बढ़ाने वाले रसको संचित करता हूँ । दूध घी से हमारे वीर तृप्त हों, इतनी गायें हमारे पास रहें ।
अ० २।२६।५

गृहस्थ—हमारे घर में दूध, घी, धान्य, पत्नी, वीर पुरुष, और रस है ।
अ० २।१६।५

ऋण निन्दा—इस लोक और परलोक में कहीं हम ऋणी न हों ।
अ० ६।११७।३

नौकावर्णन—उत्तम रक्षा के साधनों से युक्त, विस्तृत, न टूटी हुई, सुख देनेवाली, अखण्डित, उत्तमता से चलती हुई, दिव्य, सुन्दर बल्लियों वाली, न चूने वाली नाव पर हम चढ़ें ।
अ० ७ । ६ (७) ३

हमारे घरों में कभी न गलती करनेवाला कबूतर मंगल मूर्ति होकर रहे और समाचार ले जाने का काम करे ।
अ० १० । १६५ । २

उत्तम विचार के साथ कबूतर को भेजिए और प्रसन्नता के साथ आवश्यक सन्देशा भेजिए । यह कबूतर लौटकर हमारे सन्देहों को दूर करेगा ।
अ० १० । १६९ ।

संयम—आचार्य और राष्ट्रपति को संयम और ब्रह्मचर्य से रहना शोभा देता है। जो संयमी राजा होता है, वही इन्द्र कहाता है।

अ० ११।५।६७

राजा ब्रह्मचर्य के ही तेज से राष्ट्र की रक्षा करता है और आचार्य ब्रह्मचर्य ही के बल पर विद्यार्थियों को ब्रह्मचारी बना सकता है।

अ० ११।५ (७)

ब्रह्मचर्य से और तप से देवताओं ने मृत्यु को जीता।

अ० ११।५।(७)

विवाह—हे तपोनिष्ठ ब्रह्मचारी ! तुझ सुन्दर को मैंने मन से वर लीया। ऋ० १०।१८३।१

हे वधू ! तू अपने सुन्दर शरीर का ऋतुकालीन संयोग चाह ! मैं तुझे मन से चाहता हूँ, मुझ से विवाह करके सन्तान उत्पन्न कर।

ऋ० १०।१८३।२०

विवाह की कामनावाली कितनी ही स्त्रियाँ पुरुष की मीठी-मीठी बातों में बहक कर उनके अधीन हो जाती हैं परन्तु कुलवती (भद्रा) स्त्री सभा के बीच में ही पति को चुनती हैं।

ऋ० १०।२१।१२

बिन दुही गाय की तरह अविवाहिता युवतियाँ जो कुमारावस्था त्याग चुकी है या नवीन ज्ञान से पूर्ण होकर गर्भ धारण करती है।

ऋ० ३।५५।१६

औषधि—जो औषधियाँ देवों से तीन युग प्रथम उत्पन्न होगई थी उनकी एक सौ सात जातियाँ हैं। ऋ० १०।९७।२

औषधियाँ सोमराज से कहती हैं कि सच्चा वैद्य जिस रोगी के लिये हमारी योजना करता है उस रोगी को रोग से हम मुक्त कर देती हैं।

ऋ० १०।९७ [illegible]

एक समय में दो पत्नी निषेध —जैसे रथ का घोड़ा दो धुरों के बीच में दबा हुआ हिनहिनाता चलता है वैसे ही दो स्त्रियों वाले की दशा होती है।
ऋ० १० । १०१ । ११

अतिथि सत्कार—जो अतिथि से प्रथम खाता है वह घर का सुख, पूर्णता, रस, पराक्रम, वृद्धि, प्रजा, पशु, कीर्ति, श्री, ज्ञान को खाता है।
अ० ९ । ८ । ३

अतिथि के आने पर स्वयं खड़ा होजाय और कहे कि हे व्रती! आप कहाँ से पधारे हैं? यह जल है आप तृप्त हूजिये, जो वस्तु चाहिए वह लीजिए, आपकी जो इच्छा होगी वही की जायगी।
अ० १५ । ११ । १-२ ।

गृह व्यवस्था—यहाँ मैं पक्का घर बनाता हूँ। यह घर सुरक्षित रहे। इसमें हम सब घर के शूर, निरोगी पुरुष रहेंगे।
अ० ३ । १२ ।

इसी घर में गाय, घोड़ों का भी प्रबन्ध होगा। यह घर घी, दूध अन्न और शोभा से पूर्ण रहेगा।
अ० ३ । १२

इस घर में बहुत घृत होगा। धान के कोठे होंगे। इस घर में बछड़े और बच्चे खेलेंगे और शाम को कूदती गायें आवेंगी।
अ० ३ । १२ ।

वीर पुरुष—हे मनुष्यों के हितैषी! तेरी बाहुओं में कल्याणकारी धन है। छाती पर तेज का भूषण है। कन्धों पर भाला और शस्त्रों में तेज धार है। पक्षी के पंखों के समान तेरे बाणों की शोभा है।
ऋ० १ । ११६ । १०

वे वायु के समान बलिष्ट, युगल भाई के समान एक सी वर्दी वाले सुन्दर, भूरे और लाल रंग के घोड़ों पर बैठने वाले, निष्पाप

शक्तिवान्, स्वदेशीवस्त्र पहिने मरने के लिए तैयार वीर हैं, इस लिए वे आकाश के समान विशाल हैं।

ऋ० ५ । ५१ । ४

धनुर्युद्ध—गोह के चमड़े का दस्ताना सर्प की तरह मेरे हाथ से लिपट कर धनुष की डोरी की चोट से मेरे हाथ की रक्षा करता है। ऋ० ६ । ७५ । १४

हमारे रथ के पहिये, धुरे, घोड़े और लगाम सब मजबूत हैं।

ऋ० १ । ३८ । १२

वैद्य—जो सब औषध को सभा में एकत्रित राजाओं की तरह सजा कर रक्खे-वही वैद्य है।

ऋ० १० । ६७ । ६

रक्षा के उपाय—हे ज्ञानियों! उत्तम भाषण कीजिये ज्ञान और पुरुषार्थ फैलाइये। शत्रु से बचा कर पार लेजाने वाली नावें बनाइये अन्न तैयार कीजिये। सब शस्त्रास्त्र तैयार रखिये। अग्र भाग में बढ़ाने का सत्कार, संगति-दान रूप सत्कर्म बढ़ाइये।

ऋ० १० । १०१ । २

खेती—हल चलाइये! जोडियों को जोतिये। जमीन तैयार करने पर उसमें बीज बोइये। और धान्य काटने के हँसिये निश्चय पके हुये धान्यों में व्यवहार कीजिये, इससे भरण पोषण होगा।

ऋ० १० । १०१ । ३

कुआ—सब डोल, बालटियों को ठीक रक्खो, रस्सी को मजबूत बनाओ। फिर अटूट और मीठे जल के कुए से पानी सींचो।

ऋ-१० । १०१ । ५

गोशाला—गायें स्वच्छ वायु में घूमे और स्वच्छ जल पीवें तथा पुष्टि कर औषधियाँ खाकर पुष्ट होवें और हमें अमृत समान दूध दें।

ऋ० १० । १६६ । १

वीर का लक्षण—उत्तम वीर वह है जो शत्रुओं को दूर भगाता है और सब की प्रशंसा अपनी ओर खींचता है। सब को उचित है कि वे उत्तम वीरों की ही प्रशंसा करें

ऋ० ६ । ४९ । ६

सूत कातना—सूत कात कर, उसे रंगकर, उसकी गाँठों को दूर करके, उसका कपड़ा बुनो यह तेजस्वियों का मार्ग है।

ऋ० १०।५३।६

एक मनुष्य ताना फैलावे दूसरा बाना खोले। इस तरह हम इस अच्छे मैदान में बुनाई करें। ये खूटियाँ हैं। जो बुनने के स्थान में लगाई हैं ये सुन्दर नाले और घड़ियाँ हैं जो बाने के मतलब की हैं।

ऋ० १०।१३०।२

राजा—राजा गमन शील राष्ट्रों का स्वामी है इसलिये इसके पास सब प्रकार का शस्त्र तेज रहे।

राज-समिति—हे राजन्! तू दृढ़ता पूर्वक शत्रुओं को नाश कर। राज्य भर के श्रेष्ठ जन मिलकर तेरी स्थिरता के लिये समिति बनावें।

शरीर दाह—हे जीव! तेरे प्राण विहीन मृत देह की सद्गति करने के लिये इस गार्हपत्य और आहवनीय आग को तेरे देह में लगाता हूँ। इन दोनों अग्नियों द्वारा तू परलोक की श्रेष्ठ गति को प्राप्त हो।

अ० १८।२।५६

स्वराज्य—उदार और दूरदर्शी सज्जन मिलकर स्वराज्य की व्यवस्था करें। ऋ० ५। ६६। ६

राज्याभिषेक के समय उपदेश—हे राजा! तेरा आवाहन है। तू आ, स्थिर रह। चंचल न हो सब प्रजा तुझे चाहे। और तुझ से राष्ट्र की हानि न हो। ऋ० १०। १७३। १

राजा के योग्य गुण—व्रती, सत्यधारी, तेजस्वी, और सुकर्मा ही राजा होना चाहिए।

ऋ० ८ । २५ । ८

मूर्ख—कोई कोई पुरुष सभाओं में अग्र भाग और सब कामों में प्रतिष्ठा पाते हैं; परन्तु वे दुग्ध रहित गायके समान केवल छल कपट युक्त होते हैं और अपनी मिथ्या विद्वत्ता दिखाकर मूढ़ प्रजा को ठगते हैं।

ऋ० १० । १८ । ५

पुरुष से स्त्री श्रेष्ठ—यह प्रसिद्ध है कि बहुत सी पतिव्रता स्त्रियाँ पुरुष से वधिक धर्म में दृढ़ और प्रसंसनीय होती हैं।

ऋ० १ । ६१ । ६

स्त्रीको यज्ञ का अधिकार—हे विद्वान स्त्री पुरुषों ! जो स्त्री पुरुष एक मन होकर यज्ञ करते हैं। वे ईश्वर के निकट पहुँचते हैं। और ईश्वर के आश्रम में रहते वे सुखी होते हैं।

ऋ० ८ । ३१ । ५

माँसाहारी को दण्ड—जो दुष्ट मनुष्य या घोड़े या अन्य पशु के माँस को खाकर अपना पोषण करता है जो अहिंसनीय गाय के दूध को हरता है–उसका सिर काट लिया जाय।

ऋ० १० । १७ । १६

जीवात्मा-परमात्मा—अभिन्न, भिन्न की तरह या दो पक्षियों की तरह जो एक ही वृक्ष पर साथ साथ रहते हैं उनमें एक फल खाता है। दूसरा नहीं खाता।

ऋ० १ । १६४ । २०

सृष्टिरचना—उस समय यह स्थूल जगत् न था। न तन्मात्रा तक ही थी। न परमाणु युक्त आकाश था। उस समय कहाँ, क्या, किस से ढका हुआ था ? और किसके आश्रय में था।

ऋ० १० । १२८ । १

न मृत्यु थी, न अमरत्व था न रात दिन थे। तब वही एक अपनी शक्ति से प्राण रूप था। उसके भिन्न कोई न था।

ऋ० १०। १२९। २

तब अन्धकार युक्त मूल प्रकृति थी और यह सब जगत् अज्ञेय अवस्था में गतिमय प्रवाह स्वरूप था। तब शून्यता से व्यापक प्रकृति ढकी हुई थी। तब उष्णता से एक पदार्थ बना।

१०। ११९। ३

तब मन की एक शक्ति थी--उस पर संकल्प हुआ उससे जगत बना, सत् असत चेतन और जड आत्मा और अनात्मा इन में परस्पर सम्बन्ध है। यह ज्ञानियों ने जाना।

१०। १२९। ४

तीनों (जीव, ब्रह्म, और प्रकृति) के मिलन से एक प्रकाश बना।

१०। १४९। ५

यह घर इज्जत बढ़ाने वाला, पशु के रहने योग्य, सुखदायक, हवा और प्रकाश से युक्त होगा।

ऋ० ३। १२।

मातृ भूमि—सत्य, वृद्धि, न्याय, शक्ति, दक्षता, तप ज्ञान, और यज्ञ ये आठ गुण हमारी उस मातृ भूमि की धारण की रक्षा करें जो हमें त्रिकाल में पालन करने वाली हैं।

अ० १२। १

जिस में नदी, जलाशय आदि बहुत हैं, खूब खेती होती है जो जीवित मनुष्यों को चहल पहल से भरी हुई है वह मातृ भूमि हमारी रक्षा करे। अ० १२। १

विधवा का पुनर्विवाह—हे पुरुष ! यह वैवाहिक अवस्था को स्वीकार करनेकी इच्छा रखनेवाली स्त्री सनातन धर्म का पालन करती हुई तेरे पास आती है। इसे सन्तान और धन दे।

अ० १८। ३। १

हे स्त्री ! तू इस मृतःप्राय पति के पास पड़ी है, यहाँ से उठकर जीवित मनुष्यों के पास आ। तेरे पाणिग्रहण करनेवाले पति के साथ इतना ही पत्नीत्व संबंध था।

अ० १८। ३। २

मृत पति से सम्बन्ध छुड़ा कर जीवित तरुणी स्त्री का विवाह किया गया है, ऐसा देखा है। जो गाढ़ अन्धेरे शोक से आच्छादित थी उस अलग पड़ी स्त्री को मैंने ग्रहण किया है।

अ० १८। ३। ४

पत्नी कर्म—ये तमाम सुशोभित स्त्रियाँ आ गई हैं, हे स्त्री तू उठ कर खड़ी हो, बल प्राप्त कर, उत्तम पत्नी बन कर रह। उत्तम सन्तानवाली होकर रह। यह गृह यज्ञ तेरे पास आगया है। इसलिए घड़ा ले और घर का काम कर।

अ० ११। १। ५

शुद्ध, गौर वर्ण, पवित्र, निर्मल और पूज्य बन कर अपने गृह कृत्य में दत्तचित्त हो।

गोली मारना—सीसे के लिये वरुण का आदेश है। अग्नि भी उसमें है। इन्द्र ने वह सीसा मुझे दिया है। वह डाकुओं का नाश करने वाला है।

अ० १। १६। २

यह सीसा डाकुओं को हटाता है और शत्रुओं को हटाता है। पिशाचादि क्रूर जातियों को मैं इसी से जीतता हूँ।

अ० १। १६। ३

यदि हमारे गौ या घोड़े की हिंसा करेगा तो तुझ को सीसे की गोलियों से हम बेध डालेंगे अब हमारे वीरों का कोई नाश न कर सकेगा।

अ० १। १६। ४

युद्ध—हे शूर! बाण तुम्हारे बाहु और धनुष तुम्हारे पराक्रम हैं। तलवार और परशु आदि शस्त्र सब शत्रुओं पर प्रगट कर दो।

अ० ११। ६ (११)। १

हे मित्रो! उठो और योग्य रीति से तैयार हो जाओ और अपने मित्र पक्ष के मनुष्यों को सुरक्षित करो।

अ० ११। ९। २

हे वीरो! उठो! पकड़ने और बाँधने के तमाम उपायों का संग्रह कर के शत्रु पर चढ़ाई का प्रारम्भ करो, धावा बोल दो।

अ० ११। ६। ३

हे शूरो। तुम्हारा सेनापति भागनेवाले शत्रुओं के मुखियों को चुन-चुन कर मारे। इन में से कोई बचने न पावे।

अ० ११। ९ (१८) २

शत्रुओं के दिल दहल जायँ, प्राण उखड़ जायँ, मुँह सूख जाय, परन्तु हमें विजय प्राप्त हो।

अ० ११। ६ (११) २

जो धैर्यशाली हैं, जो धावा बोलने वाले हैं, जो प्रचण्ड वीर हैं, जो धुएँ के अस्त्र का उपयोग करते हैं, जो शत्रुओं का छेदन-भेदन कर डालते हैं, उन सब की सेना तैयार करो।

अ० ११। ६। २२

हे सैनिक मैं जानता हूँ कि रक्त-पताकाओं के उड़ाने वाले आप ही विजय करेंगे।

अ० ११। १० (१८) २

कवच और विना कवच वाले, झिलमिल वाले शत्रु ये मरे पड़े हैं और कुत्ते उन्हें खा रहे हैं।

अ० ११ । १० (१२) २४

धूम्रास्त्र—हे मरुत गण ! शत्रुओं की यह जो सेना हम पर चारों ओर से स्पर्धा करके बढ़ती चली आती है, उसे प्रबल धूम्रास्त्र से छिन्न-भिन्न करडालो।

अ० ३ । २ । ५

क्षय की सूर्य चिकित्सा—जिस क्षय से अंग शिथिल हो जाते हैं उस यक्ष्मा (तपेदिक) का तमाम जहर जो पाँव, जानु, श्रेणी, पेट, कमर, मस्तक, कपाल, हृदय, आदि अवयवों में रहता है, सूर्य की किरणों से नष्ट हो जाता है।

अ० ६ । ८ । (१३)

हे क्षय रोग ! तु अपने भाई कफ और बहन खाँसी के साथ तथा भतीजी खाज के साथ किसी मरने वाले के पास जा।

अ० ५ । २२ । १२

डरे मत ! तू मरेगा नहीं, तुझे दीर्घ जीवन देता हूँ। तेरे अंगों से ज्वर को निकाले डालता हूँ और क्षय रोग को तेरे अंगों से दूर करता हूँ।

अ० ५ । ३० । ८

मुलहटी के गुण—यह मुलहटी मीठी है और मच्छरों का नाश करती है। तथा टेढ़ेपन की बढ़िया दवा है।

अ० १ । ५६ । २

रोहणी के गुण—रोहणी टूटी हड्डी को भर देती है। इससे माँस मज्जा भी जुड़ जाते हैं।

अ० ४ । २२

यदि कटारी से अंग कट गया हो, या पत्थर से कुचल गया हो तो

वह अंग एक दूसरे से ऐसा जुड जाता है जैसे उत्तम कारीगर रथ के अंगों को जोड देता है।

अ० ४।१२।७

पीपल—पीपल उन्माद और गहरे घाव की उत्तम दवा है। देवता लोगों का कथन है कि यह औषध दीर्घ जीवन भी देती है।

अ० ६।१०६।१

पृष्ठिपर्णी—यह उग्र औषध रोग जन्तुओं का नाश करती है।

अ० २।२५।१

श्यामा—यह वनस्पति शरीर के रुग्ण रूप को ठीक करती है। श्वित्र, श्वेत कुष्ठ को नष्ट करती है।

अ० २।२४।४

दशमूल—दशमूल जडी संधिरोग को आराम करती है।

अ० २।७।१

अपामार्ग—मूत्र प्यास कम होना, इन्द्रियों की क्षीणता, सन्तान न होना आदि रोग अपामार्ग से आराम होते हैं।

अ० ४।१७।६

कीटाणु—जो कीटाणु काली बगल वाले हैं, और काले रंग वाले हैं, काली भुजा और वर्णवाले हैं तथा सब वर्ण वाले हैं उनका नाश करो।

अ० ५।२३।५

ये जीवन नष्ट करनेवाले रोग-जन्तु नीची जगह और अंधेरे में रहते हैं।

अ० २।२५।५

तेज पीड़ा देनेवाले, कंपाने वाले, तेज जहर वाले ये ऐसे जन्तु हैं जो आँख से दीखते भी हैं और नहीं भी दीखते हैं।

अ० ५।२३।२

दीखने और न दीखनेवाले, भूमि पर रेंगने वाले, कपोल में होनेवाले क्रिमियों का मैं नाश करता हूँ।

अ० २। ३१। २

आंतों में रहनेवाले, सिर के, पसलियों के कृमियों का नाश करता हूँ। अ० २। ३२। ४

तीन सिरवाले, तीन कूबड़वाले, चितकबरे हैं इन्हें नष्ट करना चाहिये।

अ० ५। २३। ९

उदय होता और अस्त होता सूर्य क्रिमियों का नाश करता है।

अ० २। ३२। १

तेरी आँख, नाक, कान, ठोड़ी मस्तिष्क और जिव्हा से, तथा गले की नालियों से, अस्थि संधि से, हंसली की हड्डियों से, रीढ़ से, हृदय से, क्लोम फेफड़े से, पित्ते से, पसलियों से, गुर्दों से, तिल्ली से, जिगर से, सब रोग बीजों को मैं निकालता हूँ।

अ० २। ३३। १। २। ३

रङ्ग चिकित्सा—तेरा पीलापन (पान्डुरोग) तथा हृदय की जलन लाल रङ्ग में सूर्य की किरण छान कर शरीर पर डालने से दूर हो सकती है।

अ० १। २२। १

दीर्घायु की प्राप्ति के लिये तुझे लाल रङ्गों से चारों ओर से तुझे ढाँपता हूँ।

अ० १। २२। २

लाल रङ्ग में सूर्य की किरण छान कर शरीर पर डालने तथा लालरङ्ग की गाय का दूध पीने से दीर्घायु प्राप्त होती है।

अ० १। १२। ३

मूत्र रोग की दवा—शरकण्डा मूत्र के बन्ध को खोल कर अधिक पिशाब लाता है यह हम जानते हैं।

पिशाब के लिये सलाई लगाना—तेरे मूत्रद्वार को मैं खोलता हूँ। जैसे तालाब के बन्ध को खोलने से पानी छूट जाता है वैसे ही तेरा मूत्र बाहर आवेगा। अ० १।३।७

कुष्ट चिकित्सा—रजनी वनस्पति-जो काली सफेद तथा मटिया रंग की है सफेद कोढ़ को ठीक कर देती है।

ब्राह्मण का अपमान—उग्रोराजा मन्य मानो ब्राह्मणं यो चिकित्सति
परा तत्सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते।
अ० ५।१६।६

तद्वै राष्ट्रमाश्रयति नावं भिन्नाभिवोदकम्।
ब्रह्माणं यत्र हिंसंति तद्राष्ट्रं हन्ति दुच्छुन ॥
५।१६।८

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलंच वाकचेन्द्रियंच श्रीश्च धर्मश्च ॥
ब्रह्म चक्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणंच ॥
आयुश्च रूपंच नामच कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रंच।
पयश्च रसंश्चान्नं चान्नाद्यं चर्तंचऽसत्यं चेष्टंच पूर्तंच प्रजाश्च पशवश्च ॥
तानि सर्वाणि, अपक्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मणं क्षामेयस्य ॥

अ० १२।५।७।८।६।१०।११

मुण्डन—यह सुघड़ नाई छुरा लेकर आगया है। वह जल्दी गर्म पानी लेकर आवे और मुण्डन करे।

अ० ६।७८।१

बालों को काटे छुरा, बालों को जल से भिगावे। इसी से बालक दीर्घायु प्राप्त करे। अ० ६।६८।२

उपनयन—जिस आचार्य ने हमारे यह मेखला बांधी है उसके उत्तम शासन में हम विचरते हैं। वही हमें पार लगावे और बन्धन से मुक्त करे। अ० ६। १३३। १

इस मेखला को धारण करके हम श्रद्धा, तप, तथा आप्त वचन पर मति, मेधा धारण करेंगे। हमें दम और तप प्राप्त होगा

अ० ६। १३३। ४

वस्त्र बुनना—भिन्न-भिन्न रङ्ग रूपवाली दो स्त्रियाँ क्रम से छः खूटियोंवाले ताने के पास आती हैं और उनमें से एक सुत को खींचती है। दूसरी रखती है। उनमें से कोई भी खराब काम नहीं करती।

अ० १०। ७। ४२

यह जो कपड़े के छोर पर किनारियाँ हैं। और ये जो ताने-बाने हैं सो सब पत्नियों द्वारा बुने हुए हैं। यह सब हमारे लिये सुख कारक है।

अ० १४। २। ५१।

मनस्वी लोग सीसे के यन्त्र से ताना फैला कर मन से वस्त्र बुनते हैं।

य० १९। ८

राज्य व्यवस्था—सृष्टि के प्रारम्भ में केवल एक राजा से रहित प्रजाशक्ति ही थी। इस राजविहीन अवस्था को देखकर सब भय-भीत हो गये और सोचने लगे कि क्या यही दशा सदैव रहेगी।

यह प्रजाशक्ति उत्क्रान्त होगयी और गृहपति में परिणत हो गयी, अर्थात जो अलग-अलग मनुष्य थे उनके व्यवस्थित कुटुम्ब बन गये।

यह भी प्रजा शक्ति उत्क्रान्त होगई और सभा के रूप में परिणित हुई। सभा में जो प्रविष्ट होता वह सभ्य कहलाता था।

वह भी प्रजा शक्ति—उत्क्रान्त हो गयी और तब समिति (चुनाव सभा) बनाई। उसके सदस्य सामित्य, कहलाये।

वह भी प्रजा शक्ति उत्क्रान्त हो गयी। और आमन्त्रण (मन्त्रि मण्डल) में परिणत हुई। इस के सभ्य मन्त्री कहाये।

अ० ८। १०। १। २। १। ८ ९
१०। ११। १२। १३

फिर राजा बनाया गया, वह सबको रंजन (प्रसन्न) रखता था इस लिये राजा नाम पड़ा अ० १४। ६। २

वह प्रजाओं के अनुकूल आचरण करता रहा। उसके पास सभा, समिति, सेना और खजाना भी होगया।

अ० १४। ६। ३

जात कर्म—सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्री अपने अंगों को भली भाँति कोमल बनावे, और हम उसके लिये प्रसूति गृह का बन्दोबस्त करें। हे जरवा (सुवर्णे !) प्रसन्न हो।

अ० १-११। ३।

हे स्त्री ! मैं तेरे गर्भ-मार्ग और योनिको तथा योनि के पास वाली नाड़ियों को फैलाती हूँ, इससे गर्भ सरलता से बाहर आवेगा। फिर मैं जरायु से कोमल बालक और माता को अलग करूँगा।

अ० १०-११। ६

अन्न प्राशन—हे बालक ! तेरे लिये जौ और चावल कल्याण कारी और बलभागी हों तथा मधुर स्वादवाले हों। ये क्षय को नहीं होने देते। अ० ८। २। १८

हे पुष्ट आंखों वाली बुद्धिमती ! गर्भ को ठीक ठीक धारण कर। पुष्टि दाता का रज वीर्य तेरे गर्भ को यथाक्रम पुष्ट करो।

म० ५। २५। ३।

प्राण और अपान तेरे गर्भ को पुष्ट करें, सत्पुरुष और विद्वान् तेरे गर्भ को पुष्ट करें। इन्द्र और अग्नि तेरे गर्भ को पुष्ट करें।

अ० ६। १७। ४

राजा वरुण जिस दिव्य औषधि को जानता है उस गर्भ-कारण-औषधि को तू पी।

५। २५। ६

पुंसवन—हे स्त्री! जिसकारण तू बाँझ होगई है उस कारण को हम तुझ में से नष्ट करते हैं।

अ० ३। २३। १

हे स्त्री! मैं तेरा पुंसवन कर्म करता हूँ जिससे तेरा गर्भ योनि में आजावे।

अ० ३। २३। ५

पुंसवान किया गया। शमी (छोकर) और अश्वत्थ (पीपल) दिया गया। अब इसे पुनः प्राप्त होगा

अ० ६। ११। १

सौभाग्य के लिये तेरा हाथ पकड़ता हूँ। मुझ पति के साथ बुढ़ापे तक रह। प्रतिष्ठित और नम्र पुरुषों ने तुझे मुझे दिया है, केवल गृह कृत्यों के लिये।

अ० १४-१-५.

हम सीधे उस मार्ग पर चलेंगे जिसमें वीरत्व को दाग न लगे और धन प्राप्ति भी हो।

अ० १४-२-८

हे प्रिय दृष्टि वाली! पति की रतिका, सुखदायिनी, कार्य निपुणा, सेवा करने वाली, नियमों का पालन करने वाली, वीर पुत्र उत्पन्न करने वाली, देवरों से स्नेह रखने वाली तू हो।

गर्भाधान—पुत्रकामा स्त्री ने जिस पति को धारण किया है उससे ईश्वर की कृपा से पुत्र प्राप्त होगा।

अ० ६।८१।३

पुरुष जननेन्द्रिय गर्भ में वीर्य का धारण कराने वाली है। यह इन्द्रिय मेरुदण्ड, मस्तिष्क और अंगसे इकट्ठे किये वीर्य को बाण में पंख की तरह योनि में फेंकता है।

कन्यादान—हे वर! यह वधू तेरे कुल की रक्षा करने वाली है, इसे तेरे लिये दान करता हूँ। यह सदा माता पितादिकों में रहे और अपनी बुद्धि से उत्तम विचारों को उत्पन्न करे।

अ० १।१४।३

पत्नीकर्म—ये सब सौभाग्यमान स्त्रियां आगई हैं। स्त्री तू उठ, बल प्राप्तकर, पति के साथ उत्तम पत्नी बन कर और पुत्रवती हो कर रह। यत्नकर और घड़ा लेकर जल भर।

अ० १२।१।१४

यहाँ ही तुम दोनों रहो। अलग मत हो। पुत्र और नातियों के साथ खेलते हुए अपने उत्तम घर में दीर्घ काल तक आनन्द प्राप्त करो।

अ० १४।१।२२

जिस प्रकार बलवान समुद्र ने नदियों का साम्राज्य उत्पन्न किया है इसी प्रकार तू पति के घर जाकर सम्राट् की पत्नी बन।

अ० १४०।१।४३।

अपने श्वसुर देवर, ननद और सासू के साथ महारानी हो कर रहे।

अ० १४।१।४४।

पांचवां—अध्याय

वेद काल का सामाजिक जीवन

ईसा से पूर्व ८००० वर्ष वेद का काल है ऐसा अनुमान हम पिछले अध्यायों में कर आये हैं। अब यह देखना चाहिये कि इस काल में आर्यों की सामाजिक दशा क्या थी। यद्यपि ऋग्वेद के हिमागम पूर्व के काल पर हम प्रकाश नहीं डाल सकते, परन्तु हिमागम के बाद जब आर्य भारतवर्ष में आ पहुँचे थे उस समय की बहुत कुछ बातों का हम अनुमान लगा सकते हैं।

वैदिक काल में स्त्री पुरुषों के विवाह सम्बन्ध युवावस्था में उनकी इच्छा से होते थे और वे संबंध आजीवन रहते थे। 'विवाह' शब्द नहीं था, कन्या दान नहीं होता था। कन्यादान का एक ही मंत्र अथर्ववेद में मिलता है जो आधुनिक है। पति के मरने पर पत्नी का दूसरे पुरुष से पूर्ववत् संबन्ध हो जाता था। स्त्रियाँ माता के वँश में नहीं गिनी जातीं थीं। न वे माता की वारिस हो सकतीं थीं। पिता कुटुम्ब का रक्षक और पालक होता था। माता पर बच्चों का दायित्व रहता था, और बच्चे माता की सम्पत्ति होते थे। जाति और वर्ण ऋग्वेद के काल में नहीं थे—कुटुम्ब थे और पिता उनका मुखिया या गृहपति होता था।

पशुपक्षियों के पालतू करने और पहचान ने का हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं। शिल्प में घर–गाँव--नगर बसाना, सड़क, कुए, बगीचे बनाना, नावों का प्रयोग करना, सूत कातना, वस्त्र बुनना, ऊन बनाना, चर्म के वस्त्र तैयार करना, रंगना और लकड़ी का काम आर्य बहुत अच्छी तरह जान गये थे।

खेती उनका प्रधान कार्य था, खेती के सामान—हल बैलगाड़ी छकड़ा, पहिया, धुरा, जुआ, आदि—का बार बार उल्लेख आया है। बहुत से कुल पति अपने परिवार के साथ उत्तम चराहगाहों की खोज मे भारत मे आगे को बढ़ रहे थे। वे अनार्यों से युद्ध करते थे। युद्ध के शस्त्र और ढंग हम पीछे बता चुके हैं। स्वर्ण, चाँदी और लोहा उन्हें मिल चुका था।

वैदिक आर्य गौर वर्ण के, सुन्दर, कद्दावर, पुष्ट, योद्धा, सहिष्णु और बुद्धिमान थे। वे सदा अग्नि साथ रखते थे। वे गम्भीरता से प्रकृति का अध्ययन करते और उसके रहस्यों को मौलिक ढंग से खोजते थे।

आर्यों को समुद्र और समुद्र यात्राओं का पूरा अनुभव था। व्यापार में व्यवहार कुशलता बढ़ गई थी और वस्तुओं का यथावत विनिमय होता था। जौ और गेहूँ, की खेती मुख्य थी। आर्य लोग माँस खाते थे। नशे की चीज केवल एक सोम बूटी थी जो दूध मिलाकर पी जाती थी; परन्तु जब आर्य पूर्व मे दूर तक पहुँच गये तब सोम उन्हें कम मिलने लगा और वे फिर मद्य बनाकर उससे सोम का काम लेने लगे। ऊन और सूत को रंग कर सुन्दर वस्त्र बनाने की कला बहुत उन्नत हो गई थी। वे वनों में आग लगा कर उन्हें साफ करते और उसे 'पृथ्वी का मुण्डन' कहते थे। रथ बहुत सुन्दर बनाते थे। स्वर्ण के गहने और लोहे के शस्त्र बहुतायत से बनते थे। गले, हाथ, पैर और सिरों पर आभूषण पहने जाते थे। लोहे के नगरों का भी जिक्र मिलता है जो कदाचित् किले होंगे। भवन हजारों खम्भों से युक्त पत्थरों की दीवारों के बनते थे। राजा और प्रजापति पिछले दिनों मे बन गये थे, वे हाथियों पर मन्त्री के साथ निकलते थे। बकरे, भेड़, साँड, भैंसे और कुत्ते बोझा ढोया करते थे। सिन्धु से सरस्वती तक और पर्वतों से समुद्र तक का समस्त भारत खण्ड ऋग्वेद काल में आर्यों ने जीत लिया था। और गंगा तक

उनका निष्कंटक अधिकार था। पाँच नदियों के निकट बसने वाले पाँच समूह या प्रजातन्त्र थे, जो पंचजनः के नाम से प्रसिद्ध हुए।

ऋषि लोग सदाचारी गृहस्थों की तरह स्त्री, पुत्र धनधान्य के साथ रहते थे। खेती करते, युद्ध भी करते और होम करते थे। स्त्रियाँ परदा नहीं करती थीं। ऋषियों की कोई जाति या वर्ण न था—उनके विवाह सम्बन्ध साधारण मनुष्यों के साथ होते थे। 'वर्ण' शब्द आर्य और अनार्यों में भेद करता था—आर्यों की भिन्न भिन्न जातियों में वह कहीं भी भेद नहीं करता था। एक परिवार के भिन्न भिन्न लोग अलग अलग कार्य करते थे। प्रत्येक कुटुम्ब का पिता स्वयं पुरोहित होता था।

वेद में मूर्ति-पूजा या मूर्ति निर्माण का कहीं भी उल्लेख नहीं। वे लोग मूर्ति की पूजा नहीं करते थे। न वे कोई मन्दिर आदि बनाते थे। प्रत्येक परिवार में अग्नि सुरक्षित होती थी और वे वेद मन्त्र गा-गा कर उसमें नित्य नया दधि तथा कुछ घृत डाल दिया करते थे। स्त्री पुरुषों के समान अधिकार थे। वे यज्ञ में समान भाग लेतीं थीं। कुछ स्त्रियां स्वयं ऋषि पद प्राप्त कर चुकीं थीं और विदुषी थीं। बहुत स्त्रियाँ होम करती और ऋचाएं पढ़तीं थीं। कुछ स्त्रियाँ आजन्म कुमारी रहतीं थीं। विवाहित रहना अनिवार्य न था। ये कुमारियाँ पिता की सम्पत्ति में से कुछ पातीं थीं। पत्नियां चतुर और परिश्रमी होती थीं। वे घर के सभी कार्य प्रातःकाल बहुत तड़के उठकर करना आरंभ कर देतीं थीं। कुछ व्यभिचारिणी स्त्रियाँ भी थीं। जुआ खेलने का प्रचार था पर वह निन्द्य माना जाता था। विवाह की प्रतिज्ञाएँ उच्च कोटि की होती थीं। बड़े बड़े धनपति और राजा अनेक पत्नियाँ रखते थे। स्त्रियों की सौतों का उल्लेख मिलता है। परन्तु इस कुरीति का उल्लेख अंतिम सूक्तों में है। किसी के यदि पुत्र नहीं होता था तो वह अपनी पुत्री के पुत्र को गोद लेता था। परन्तु पुत्र के रहते पुत्र ही समस्त सम्पत्ति का अधिकारी होता था-पुत्री

नहीं। गोद लेने की पद्धति अधिक पसन्द न थी। ऐसे पुत्र उत्पन्न करने की लालसा खूब थी जो अन्न उत्पन्न करे और शत्रुओं का नाश करे। मृत्यु के बाद परलोक जाने में विश्वास था। मृतक का अग्नि संस्कार कराया जाता था। मृतक की भस्मों पर मिट्टी के ढूहे उठाये जाते थे। *विधवाएँ दूसरे पतियों से सम्बन्ध करती थीं। वे वैधव्य का दुःख सहन* करें यह वैदिक ऋषि नहीं चाहते थे। ऋग्वेद के देवताओं का वर्णन हमने पीछे किया है, उससे पता चलेगा कि उस काल के ऋषि गण किस प्रकार प्रकृति की शक्तियों का अध्ययन कर रहे थे।

ऋषियों को वैदिक सूक्तों के जानने के कारण सम्मान पद मिलता था। राजा उन्हें पुरस्कार देते थे। खास खास कुछ परिवार बहुत प्रसिद्ध हो गये थे जिनमें विश्वामित्र और वशिष्ठ के कुल अधिक प्रसिद्ध थे। परन्तु धर्माचार्य और योद्धा एक ही होते थे—यह बात बहुत स्पष्ट है। परन्तु न वे ब्राह्मण थे और न क्षत्रिय यह बात ध्यान देकर समझ बूझने के योग्य है।

ब्राह्मण तथा उपनिषत्-काल का सामाजिक जीवन

इस काल का प्रारम्भ ईसा से २ हजार वर्ष पूर्व के अनुमान ख्याल किया जा सकता है। यह वह काल था जब आर्य सतलज को पार करके आगे बढ़ आये थे और उनने गंगा जमुना के किनारे-किनारे काशी और उत्तर विहार में बड़े बड़े राज्य स्थापित किये थे। ब्राह्मणों, उपनिषदों और आरण्यकों में गंगा की घाटी में रहने वाले इन उन्नत आर्यों की कुरु, पांचाल, कोशल और विदेह जातियों, उनके प्रबल राज्यों तथा सभ्यता का आभास मिलता है।

यह बात हम ऊपर कह चुके हैं कि सभी सूत्र ग्रन्थ ब्राह्मणों के बाद के बने हुए हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों से यह स्पष्ट होता है कि पुरोहितों का उस समय प्राबल्य हो गया था—परन्तु उपनिषद् बताते हैं कि क्षत्रियों की भी प्रधानता थी। मालूम होता है ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों दल समाज में अपना जातीय स्थान स्थापित करना चाहते थे। उस समय उनका केवल व्यक्तिगत स्थान था पर धीरे-धीरे जातीय स्थान बन रहा था। ब्राह्मण ग्रन्थों को तब तक ईश्वरीय ज्ञान माना जाता रहा था और वेद ब्राह्मणों की व्याख्या के अनुकूल समझे जाते रहे थे। हम पीछे लिख आये हैं कि ब्राह्मणों में दिल्ली से लेकर उड़ीसा तक के प्रबल राज्यों का किस प्रकार वर्णन है। इन राज्यों में ग्राम, नगर, जन पद, परिषद्, पाठ-शालाएँ आदि बन गई थीं—नागरिकता का सर्वथा प्रभाव बढ़ रहा था। जनक, अजात शत्रु, जनमेजय और परिक्षित आदि प्रतापी राजाओं के वर्णन हमें यहाँ देखने को मिलते हैं। परन्तु दक्षिण भारत की बस्तियों और निवासियों का कोई ज़िक्र नहीं है अतः अवश्य ही दक्षिण प्रदेश आर्यों के लिये अपरिचित था।

कुरु और पाँचाल आर्य राजाओं के प्राचीन राजवंश थे। आधुनिक दिल्ली के निकट कुरुओं की प्रबल राजधानी थी और ये वही चन्द्रवंशी पुरुष थे जिनका ज़िक्र सुदास के युद्धों में मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण से पता लगता है कि उत्तर कुरु तथा उत्तर माद्र लोग हिमालय के उस पार रहते थे। टालमी का 'ओहोर-कोर्ट, उत्तर कुरु ही है परन्तु हमारा खयाल है यह जाति काशगर के रास्ते काश्मीर में बसती हुई गंगा की घाटियों तक आई थी। द्वाब में कुरुओं के बस जाने पर पाँचाल लोग भी आगे को बढ़े और उन्होंने कन्नौज के निकट अपने राज्य को स्थापित किया। ये पाँचाल कदाचित् वही पञ्चजन हैं जिनका उल्लेख ऋग्वेद में है।

छठा-अध्याय

ब्राह्मण ग्रन्थ

ऋषि दयानन्द के प्रादुर्भाव से प्रथम गत ५ हजार वर्षों से, जब से वेदों को यज्ञपरक स्वीकार किया गया, ब्राह्मण ग्रन्थों को प्रायः सभी प्राचीन हिन्दू वैदिक विद्वानों ने वेदों का ही पद दिया है। इन विद्वानों में शबर, पितृभूति, शंकर, कुमारिल, विश्वरूप, मेधातिथि, कर्क, वाचस्पति, मिश्र, रामानुज, उव्वट और सायण, आदि सभी बड़े बड़े आचार्य आ गये। उन्नीसवीं शताब्दि के अन्त में ऋषि दयानन्द ने साहस पूर्वक यह घोषणा की कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं। फिर धीरे धीरे योरोपीय विद्वानों ने वैदिक अनुसंधान की ओर ध्यान दिया और अब तो प्राय. सभी पक्षपात शून्य विद्वान् इस बात को स्वीकार करते हैं। वास्तव में वैदिक साहित्य भी इस बात को प्रमाणित करता है कि ब्राह्मण वास्तव में वेद नहीं हैं। अथर्व वेद के प्रकरण में हम ऐसे बहुत प्रमाण उपनिषद् आदि के तथा स्वयं ब्राह्मणों के भी दे आये हैं। उनके सिवा गोपथ ब्राह्मण का (पूर्व भाग २—१०) निम्न वाक्य इस बात को और भी स्पष्ट करता है।

"एवमि मे सर्वे वेदा निर्मिता' सकल्पा' स रहस्या' स ब्राह्मणाः सोप निषत्का' सेतिहासाः सान्वाख्याना. स पुराणाः स स्वराः स संस्काराः स निरुक्ता' सानुशासना. सानुमार्जनाः स वाकोवाक्याः"

अर्थात्—इस प्रकार ये समस्त वेद कल्प,
इतिहास, अन्वाख्यान, पुराण, स्वर ग्रन्थ,
अनुशासन, अनुमार्जन, और वाकोवाक्य

इनके सिवा अष्टाध्यायी में पाणिनि भी ऐसा ही बताते हैं। यथा—

१—दृष्टंसाम ४ । २ । ७

२—तेन प्रोक्तम् ४ । ३ । १०१

३—पुराण प्रोक्तेषु ब्राह्मण कल्पेषु, ४ । ३ । १०५

४—उपज्ञाते ४ । ३ । ११५

५—कृते ग्रन्थे ४ । ३ । ११६

अर्थात—

१—मन्त्र दृष्ट हैं।

२—शेष प्रोक्त हैं।

३—कल्प और ब्राह्मण प्रोक्त हैं।

४—वेद स्फूर्ति से प्रकट हुए हैं।

५—साधारण ग्रन्थ रचे गये हैं।

मीमाँसा सूत्र (१२ । ३ । १७) में भी ब्राह्मण ग्रन्थों को संहिता से पृथक माना गया है। सुनिए—

"मन्त्रोपदेशो वा न भाषिकस्य प्रायोपपत्तेर्भाषिक श्रुतिः। अर्थात, भाषिक श्रुति नहीं हो सकते।

इसी के भाष्य पर शवर स्वामी लिखते हैं—

"भाषा स्वरो ब्राह्मणे प्रवृत्तः"

अर्थात्—ब्राह्मणों में भाषा स्वर का प्रयोग किया गया है। उपर्युक्त प्रमाणों के सिवा, महत्व पूर्ण बात एक यह है कि किसी विद्वान् ने ब्राह्मण ग्रन्थों के ऋषि आदि की अनुक्रमणि नहीं सुनी। संहिताओं की ऋषि-अनुक्रमणि होने पर भी शाखा नाम से व्यवहृत होने वाली ब्राह्मण भाग संयुक्त-संहिताओं की अनुक्रमणिकाओं में भी ब्राह्मण भागों

इन दोनों जातियों के वर्णन से ब्राह्मण भरे पड़े हैं। इनके यशास्वरों और पुरोहितों के ठाठ, पराक्रम, विद्या और सभ्यता का ब्राह्मणों से बड़ा पता चलता है। अब ये केवल किसान जाति या तपस्वी न थे—इनके पास राज्य संपदा, सुशिक्षित सेना, स्थायी राजमहल, मन्त्री, राजसभा, हाथी, घोड़े, पैदल, रथ, योद्धा सब सामग्री थी। पुरोहित धीरे-धीरे ऊपर चढ़ रहे थे और धर्म-क्रियाओं को बढ़ाये चल रहे थे। धार्मिक और सामाजिक कार्यों की यथा नियम शिक्षा मिलती थी। स्त्रियों का उचित आदर था एवं वे स्वतन्त्र थीं—पर्दा न था। परन्तु कुछ लोग अनेक पत्नी करने लगे थे।

कुरु पाँचालों में युद्ध होते थे। जब जमुना और गंगा के बीच की धरती भर गयी तो उद्योगी अधिवासियों के नवीन झुण्ड गंगा पार कर आगे बढ़े। वे बराबर नदियाँ पार करते तथा जंगलों को साफ करते हुए पूर्व की ओर गण्डक नदी तक बढ़ गये और राज्य स्थापित किये। गण्डक कोशल के पूर्व में तथा विदेह के पश्चिम भाग में थी। अन्ततः विदेहों का राज्य समस्त उत्तर भारत में प्रधान राज्य हो गया।

ब्राह्मण और उपनिषद दोनों ही में प्रतापी विदेह जनक का पता चलता है जो प्रबल राजा ही न था, विद्वान और विद्वानों का हितैषी भी था। वह शास्त्रार्थ किया करता था—विद्वानों को खूब दान भी देता था। उसने अक्षय कीर्ति प्राप्त की थी। एक बार काशियों के प्रतापी राजा अजात शत्रु ने कहा था कि 'सचमुच सब लोग यह कह कर भागे जाते हैं कि जनक हमारा रक्षक है।' इसी जनक की सभा में प्रख्यात पुरोहित याज्ञवल्क था जिसने यजुर्वेद का नवीन संस्करण किया और शत पथ ब्राह्मण बनाया। परन्तु जनक जहाँ इस प्रकार इन पुरोहितों का सत्कार करता था एवं स्वयं भी यज्ञविधि को सब ब्राह्मणों से अधिक जानता

था जैसा कि शतपथ से प्रकट है, वहाँ वह इन विधियों पर विश्वास नहीं रखता था। वह उस गूढ़ ब्रह्मज्ञान का ज्ञाता था जो इन पुरोहितों को मालूम न था। और बड़े बड़े पुरोहित उसकी शरण में इसीके लिए आते थे। वह सब को खिलाता था पर असल भेद न बताता था। उस समय अवश्य क्षत्रियगण ब्राह्मणों के इस कर्मकाण्ड के दर्प से अधीर हो गये थे। वे सोचने लगे थे कि इन क्रिया संस्कारों और विधियों में कुछ नहीं है। वे इन ब्राह्मणों के क्रिया संस्कारों को करते तो अवश्य थे—परन्तु उन्होंने अधिक पुष्ट विचार संग्रह किये थे। उन्होंने आत्मा के उद्देश्य और ईश्वर के विषय में खोज की थी जहाँ आकर ब्राह्मणों ने क्षत्रियों के सन्मुख हार मानी थी। यह विदेह राजा उपनिषदों के विचारों को उत्पन्न करने के कारण राजाओं और विद्वानों में अत्यधिक सम्मानित हो गया था।

उपनिषदों में ऐसे बहुत से प्रमाण हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि क्षत्रिय ही सच्चे धर्म के शिक्षक थे। ये प्रमाण हमने उपनिषद के अध्यायों में संग्रहीत किये हैं। वह ब्रह्मज्ञान जो मसीह से २००० वर्ष प्रथम था पहिले किसी ब्राह्मण ने नहीं प्राप्त किया था, वह इस सृष्टि में क्षत्रियों ही को प्राप्त था।

छठा-अध्याय

ब्राह्मण ग्रन्थ

ऋषि दयानन्द के प्रादुर्भाव से प्रथम गत ५ हजार वर्षों से, जब से वेदों को यज्ञपरक स्वीकार किया गया, ब्राह्मण ग्रन्थों को प्रायः सभी प्राचीन हिन्दू वैदिक विद्वानों ने वेदों का ही पद दिया है। इन विद्वानों में शबर, पितृभूति, शंकर, कुमारिल, विश्वरूप, मेधातिथि, कर्क, वाचस्पति, मिश्र, रामानुज, उव्वट और सायण, आदि सभी बडे बडे आचार्य आ गये। उन्नीसवीं शताब्दि के अन्त में ऋषि दयानन्द ने साहस पूर्वक यह घोषणा की कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं। फिर धीरे धीरे योरोपीय विद्वानों ने वैदिक अनुसंधान की ओर ध्यान दिया और अब तो प्रायः सभी पक्षपात शून्य विद्वान् इस बात को स्वीकार करते हैं। वास्तव मे वैदिक साहित्य भी इस बात को प्रमाणित करता है कि ब्राह्मण वास्तव में वेद नहीं हैं। अथर्व वेद के प्रकरण मे हम ऐसे बहुत प्रमाण उपनिषद् आदि के तथा स्वयं ब्राह्मणों के भी दे आये हैं। उनके सिवा गोपथ ब्राह्मण का (पूर्व भाग २—१०) निम्न वाक्य इस बात को और भी स्पष्ट करता है।

"एवमि मे सर्वे वेदा निर्मिता' सकल्पाः स रहस्याः स ब्राह्मणा' सोप निषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्याना' स पुराणाः स स्वरा. स संस्काराः स निरुक्ता. सानुशासनाः सानुमार्जनाः स वाक्योवाक्याः"

अर्थात्—इस प्रकार ये समस्त वेद कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषद् इतिहास, अन्वाख्यान, पुराण, स्वर ग्रन्थ, संस्कार ग्रन्थ, निरुक्त, अनुशासन, अनुमार्जन, और वाक्योवाक्य सहित बनाये गये।

इनके सिवा अष्टाध्यायी में पाणिनि भी ऐसा ही बताते हैं। यथा—

१—दृष्टंसाम ४ । २ । ७

२—तेन प्रोक्तम् ४ । ३ । १०१

३—पुराण प्रोक्तेपु ब्राह्मण कल्पेपु, ४ । ३ । १०५

४—उपज्ञाते ४ । ३ । ११५

५—कृते ग्रन्थे ४ । ३ । ११६

अर्थात—

१—मन्त्र दृष्ट हैं।

२—शेष प्रोक्त हैं।

३—कल्प और ब्राह्मण प्रोक्त हैं।

४—वेद स्फूर्ति से प्रकट हुए हैं।

५—साधारण ग्रन्थ रचे गये हैं।

मीमाँसा सूत्र (१२ । ३ । १७) में भी ब्राह्मण ग्रन्थों को संहिता से पृथक माना गया है। सुनिए—

"मन्त्रोपदेशो वा न भाषिकस्य प्रायोपपत्तेर्भाषिक श्रुतिः। अर्थात् भाषिक श्रुति नहीं हो सकते।

इसी के भाष्य पर शवर स्वामी लिखते हैं—

"भाषा स्वरो ब्राह्मणे प्रवृत्तः"

अर्थात्—ब्राह्मणों में भाषा स्वर का प्रयोग किया गया है। उपर्युक्त प्रमाणों के सिवा, महत्व पूर्ण बात एक यह है कि किसी विद्वान् ने ब्राह्मण ग्रन्थों के ऋषि आदि की अनुक्रमणि नहीं सुनी। संहिताओं की ऋषि-अनुक्रमणि होने पर भी शाखा नाम से व्यवहृत होने वाली ब्राह्मण भाग संयुक्त-संहिताओं की अनुक्रमणिकाओं में भी ब्राह्मण भागों

के ऋषि नहीं दिये गये। केवल प्रजापति को ही ब्राह्मणों का ऋषि कह कर इस विषय को छोड़ दिया है।

वास्तव में यदि इस बात पर विचार किया जाय कि वेदों की संज्ञा किस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों को दी गई तो यह स्पष्ट होता है कि पुरोहित सम्प्रदाय का जो वेदों को यज्ञ परक बनाकर उसके द्वारा बड़ी भारी आजीविका कर रहा था, वेदों को कण्ठ रखना व्यवसाय था अतः वह वेदों की अपनी मनोनीत व्याख्या ब्राह्मणों से कराना चाहता था। इसलिए उसने ब्राह्मणों को ऐसा महत्व दिया। काशी में जब श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती से ऋषि दयानन्द का शास्त्रार्थ हुआ तब यही किया गया कि ब्राह्मण ग्रन्थों का एक पत्रा वेद कह कर उपस्थित किया गया।

ब्राह्मण वास्तव में वेदों को यज्ञ परक प्रमाणित करने के लिये निर्माण किये गये हैं। उनमें यद्यपि वेदों की व्याख्या है--पर वे न तो वेदों के इतिहास ही हैं और न उनमें वेदों की व्याख्या ही है। वे केवल वेदों को यज्ञपरक प्रमाणित करने वाले ग्रन्थ हैं। इन ग्रंथों के भयानक प्रभाव के कारण और महीधर जैसे व्यक्ति का वेदभाष्य पर कुरुचिपूर्ण भाष्य करने के कारण ही पुरोहितों का यजमानों पर प्रबल अधिकार हो गया। यजमान की स्त्री, धन, और सम्पत्ति सभी पर उनकी सत्ता थी। मध्यकाल के हिन्दूजीवन में यज्ञों और वेदों के नाम पर व्यभिचार का ताण्डव नृत्य इतनी भीषणता से होना कि भरी सभा में राज महिषी को घोड़े से सहवास कराना पड़े, एक असाधारण पतन है। इतिहास बताता है कि इस भयानक कर्म से कितनी रमणी रत्नों को प्राण और लाज गँवानी पड़ी। हिंसा का ऐसा एक छत्र राज्य हुआ कि सहस्रावधि पशुओं का वध यज्ञ के नाम पर चिरकाल तक होता रहा।

सभी ब्राह्मण ग्रंथों का प्रधान विषय यज्ञाडम्बर है जो उनकी आगे लिखी जाने वाली विषय सूची से स्पष्ट होगा। प्रत्येक वेद के ब्राह्मणों में पृथक २ विशेषता है। ऋग्वेद के ब्राह्मणों में यज्ञविषयक उन्हीं कर्तव्यों का वर्णन प्रधान रूप से किया गया है, जो होता (ऋचाओं का पाठ करने वाले) को करने पड़ते हैं, सामवेद के ब्राह्मणों में मुख्य रूप में उद्गाता (सामवेद को जानने वाले) के कर्तव्यों का वर्णन किया गया है और यजुर्वेद के ब्राह्मणों में मुख्य रूप से अध्वर्यु (वास्तविक यज्ञ करने वाले) के कर्तव्यों का निर्देश किया गया है।

अब प्रत्येक ब्राह्मण के विषय का स्पष्टी करण सुनिए:—

ऋग्वेद के ब्राह्मणों में से ऐतरेय ब्राह्मण सबसे अधिक महत्त्वशाली है। यह ४० अध्याय अथवा पांच पाँच अध्यायों की आठ पञ्चिकाओं में विभक्त है। इसके अन्त के दस अध्याय बाद की रचना प्रतीत होते हैं, क्योंकि एक तो ग्रन्थ के विषय से भी ऐसा ही प्रतीत होता है, दूसरे इसी विषय का पूर्ण वर्णन करने वाले शांखायन ब्राह्मण में उस विषय पर कुछ भी नहीं लिखा। इसमें भी प्रथम पाँच पंचिकाओं की अपेक्षा बाद की तीन पंचिकाएँ नवीन प्रतीत होतीं हैं, क्योंकि उनमें नये नये लकारों का प्रयोग किया गया है, जब कि पहिला अंश विशुद्ध प्राचीन ब्राह्मण ढंग का है। इस ब्राह्मण में अधिकतर सोमयाग का वर्णन किया गया है, इसके एक से सोलहवें अध्याय तक अग्निष्टोमयाग का वर्णन किया गया है, जो एक दिन में ही समाप्त हो जाता है। फिर अध्याय १७ से १८ तक गवामयन याग का वर्णन किया गया है। जो ३६० दिन तक किया जाता है। फिर अध्याय १९ से २४ तक द्वादशाह अर्थात् बारह दिन के यज्ञ का वर्णन किया गया है। फिर अध्याय २५ से ३२ तक अग्निहोत्र का वर्णन किया गया है। अन्त में अध्याय ३३ से ४० तक राजसूययज्ञ का वर्णन किया गया है। इस प्रकार यह सबसे प्राचीन

ब्राह्मण आरम्भ से अन्त तक यज्ञ के वर्णन से भरा हुआ है। यद्यपि प्रसंग वश इसमें बीच बीच में कथानक, ऐतिह्य और कुछ वेदमंत्रों की व्याख्या भी आई है,

ऋग्वेद के दूसरे ब्राह्मण कौषीतकि अथवा शाँखायन में तीस अध्याय हैं। इसके प्रथम छः अध्यायों में भोजन संबन्धी यज्ञों का वर्णन है, जिसमें अग्न्याधान, अग्निहोत्र, द्वितीयाचंद्र याग, (दर्श याग) पौर्णमास याग, और चातुर्मास्य याग का वर्णन किया गया है। शेष अध्यायों में ७ से अन्त के ३० वें अध्याय तक ऐतरेय ब्राह्मण के वर्णन से मिलता जुलता सोमयाग का वर्णन है। यद्यपि कौषीतकि ब्राह्मण ऐतरेय की प्रथम पाँच पञ्चिकाओं की अपेक्षा नवीन है तथापि यह ग्रन्थ केवल एक ही लेखक की रचना प्रतीत होता है। ऐतरेय ब्राह्मण इतरा के पुत्र महिदास ऐतरेय का बनाया हुआ कहा जाता है। कौषीतक में कौषीतक ऋषि का विशेष आदर प्रकट किया गया है और उनके मत का समर्थन किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों के आचार्यो के दो भिन्न भिन्न सम्प्रदाय रहे होंगे जो अपनी अपनी पद्धतियों से काम लेते होंगे।

इन ब्राह्मणों मे भौगोलिक विषय पर बहुत कम प्रकाश डाला गया है। भारतीय वंशों के वर्णन करने के ढङ्ग से यह पता अच्छी तरह लग जाता है कि ऐतरेय ब्राह्मण की रचना कुरु-पंचाल देशों में हुई होगी जिनमें वैदिक यज्ञों ने बड़ी भारी उन्नति की थी और तभी संभवतः ऋग्वेद के मंत्र भी संहिता रूप में एकत्रित किये गये होंगे। कौषीतकी ब्राह्मण से पता चलता है कि उत्तरी भाषा में भाषा का अध्ययन विशेष रूप से किया जाता था और वहाँ से आये हुए विद्यार्थियों को भाषा विषयक ज्ञान में प्रमाणिक समझा जाता था।

हम पीछे कह आये हैं कि ब्राह्मणों में आख्यान भी हैं, जिनमें

से सब से प्रसिद्ध शुनःशेप आख्यान है यह एतरेय ब्राह्मण के ३२ वें अध्याय में है।

ऐतरेय ब्राह्मण से ही ऐतरेय आरण्यक का भी संबन्ध है। इसमें १८ अध्याय हैं। अनिश्चित रूप से पाँच भागों में बटे हुए हैं। अंत के दो अध्यायों की रचना सूत्रों के ढंग की है, अतः उनकी गणना सूत्रों में ही की जानी चाहिये। इसके प्रथम भाग में सामयाग का वर्णन है, द्वितीय भाग के प्रथम तीन अध्यायों में दार्शनिक विचार हैं, उसमें प्राण और पुरुष नामधारी संसारी जीव के विकाश का वर्णन है, यह वर्णन उपनिषदों के ढंग पर है और कौपीतक उपनिषद् में इसका अनुकरण ही किहा गया है, दूसरे भाग के शेष अध्यायों में ऐतरेय उपनिषद् है। अन्त के भागों में संहिता-क्रम और पद पाठों का वर्णन किया गया है।

कौपीतकी ब्राह्मण से कौपीतकी आरण्यक का संबन्ध है। इसमें पंद्रह अध्याय हैं। इनमें से प्रथम दो अध्यायों का वही विषय है जो ऐतरेय आरण्यक के प्रथम और पंचम भाग का है। इसके अतिरिक्त सातवें और आठवें अध्यायों का विषय ऐतरेय आरण्यक के तीसरे भाग से मिलता जुलता है। बीच के चार अध्यायों (३--६) में कौपीतकी उपनिषद् है।

सामवेद के ब्राह्मणों में जैमिनीय तवल्कार ब्राह्मण सब से प्राचीन है। यह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। संभवतः इसके पांच भाग हैं। इसमें से प्रथम तीन में यज्ञ के भिन्न भिन्न अंगों पर प्रकाश डाला गया है। चौथे भाग का नाम उपनिषद् ब्राह्मण है, यह आरण्यक के ढंग पर लिखा गया है। इसमें दो ऋपियों की सूचियां, तथा एक भाग प्राण की उत्पत्ति के विषय में और एक सावित्री के विषय में है, शेप में इसमें केन उपनिषद् हैं। इसके पांचवें भाग का नाम आर्षेय ब्राह्मण है। इसमें सामवेद के रचयिताओं की गणना है।

सामवेद का दूसरा ब्राह्मण ताण्ड्यमहा ब्राह्मण है, इसके पञ्चविंश ब्राह्मण और प्रौढ ब्राह्मण नाम भी हैं। इसमें मुख्य रूप से सोमयाग का वर्णन है। इसमें छोटे से छोटे सोमयाग से लेकर सौ दिन अथवा कई वर्षों तक होने वाले सोमयागों का वर्णन है। बहुत से आख्यकों के अतिरिक्त इसमें सरस्वती और दृषद्वती के तटों पर होने वाले यज्ञों का बहुत सूक्ष्म वर्णन किया गया है। यद्यपि इसको कुरुक्षेत्र विदित है तथापि अन्य भौगोलिक विषयों से इसकी उत्पत्ति पूर्व की ओर की समझी जाती है। इसके यज्ञों में से व्रात्य-स्तोम विशेष महत्वशाली है क्योंकि इसको करने से अब्राह्मण आर्य ब्राह्मणत्व में प्रवेश कर सकते हैं।

षड्विंश ब्राह्मण नामक स्वतन्त्र ब्राह्मण है किन्तु वास्तव में ताण्ड्य महाब्राह्मण में ही एक और अध्याय लगाकर इसको बना दिया गया है। इसके अन्तिम अध्याय का नाम अद्भुत ब्राह्मण है। इसमें भिन्न भिन्न प्रकार के विघ्नो को रोकने के विचित्र उपाय हैं।

सामवेद की ताण्ड्य शाखा का दूसरा ब्राह्मण छान्दोग्य ब्राह्मण है, इसमे पुत्रजन्म, विवाह अथवा देवताओं की प्रार्थना आदि की रीतियाँ हैं। प्रथम दो प्रपाठकों में इन विषयों को देकर शेष आठ प्रपाठकों में छान्दोग्य उपनिषद् है।

इसके अतिरिक्त अन्य ब्राह्मण इतने छोटे हैं कि उनको ब्राह्मण कहना ही नहीं चाहिए—

सामविधान ब्राह्मण इसमे सब प्रकार के मंत्रों से कार्य लेने के उपाय बतलाए गये है।

देवताध्याय या दैवत ब्राह्मण में सामवेद के भिन्न भिन्न प्रकार के मंत्रों के देवताओं का वर्णन है।

वंश ब्राह्मण—इसमें सामवेद के अध्यापकों की वंशावली है।

संहितोपनिषद्—इसमें ऐतरेय आरण्यक के तीसरे भाग के समान वेदों के पाठ करने का ढंग बतलाया गया है।

कृष्ण युजर्वेद के गद्य भाग ही वास्तव में कठ और मैत्रायणीय शाखाओं के ब्राह्मण हैं,

तत्तिरीय शाखा का तैत्तिरीय ब्राह्मण अत्यन्त प्राचीन है, इसके तीन खंड हं, इसमें कुछ उन यज्ञों का वर्णन है जो संहिताओं में भी छूट गये हैं।

तैत्तिरीय ब्राह्मण के साथ साथ तैत्तिरीय आरण्यक भी है। इसके दस खण्डों में से सातवें से नौवें तक में तैत्तिरीय उपनिषद् और दसवें खंड में महानारायण उपनिषद् अथवा याज्ञिकी उपनिषद् है, इन चार खंडों के अतिरिक्त इस ब्राह्मण या आरण्यक का शेष भाग विषय में संहिता से मिलता जुलता है।

ब्राह्मण के तीसरे भाग के अन्त के तीन खंड और आरण्यक के प्रथम दो खंड वास्तव में कठ शाखा के थे, यद्यपि उन्होंने इनको सुरक्षित नहीं रखा। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३। २ में नचिकेता का उपाख्यान है, जिसके आधार पर काठक या कठोपनिषद की रचना की गई है।

यद्यपि मैत्रायणी संहिता का कोई स्वतन्त्र ब्राह्मण नहीं है तथापि उसका चौथा भाग बिलकुल ब्राह्मण ढंग का है। इसी में मैत्रायण अथवा मैत्रायणीय का मैत्री उपनिषद् भी है।

शुक्ल यजुर्वेद का सब से प्रसिद्ध और महत्वशाली ब्राह्मण शतपथ ब्राह्मण है। सौ अध्यायों में लिखा जाने के कारण से ही इसका नाम शतपथ पड़ा है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में ऋग्वेद के पश्चात् इसी का भारी महत्व है। इसकी दो शाखाएँ मिलती हैं। जिनमें से माध्यन्दिनी शाखा वाले को प्रोफेसर वेबर ने और काण्व शाखा वाले को प्रोफेसर एगलिंग ने सम्पादित किया है। माध्यन्दिनी शाखा के १०० अध्यायों को चौदह और काण्व शाखा के १०० अध्यायों को सत्रह काण्डों में विभक्त किया गया है। माध्यन्दिनी शाखा के पहिले नौ काण्ड वास्तव में

वाजसनेयी संहिता के पहिले अठारह अध्यायों की विस्तृत टीका है, और यही इस ब्राह्मण का सब से प्राचीन भाग है। बारहवें खंड के 'मध्यम' कहे जाने से प्रगट होता है कि अन्त के पांच खंड (या संभवत केवल दसवें से तेरहवें तक) ब्राह्मण का एक स्वतन्त्र भाग समझा जाता था।

प्रथम से पंचम कांड तक परस्पर में घनिष्ट संबन्ध है, उनमें याज्ञवल्क्य का—जिसको चौदहवें काड के अंत में सम्पूर्ण शतपथ ब्राह्मण का रचयिता कहा गया है बार बार वर्णन आता है और उसीको सब से बड़ा प्रमाण-पुरुष माना है। इसमें पूर्वीय लोगों के अतिरिक्त अन्य किसी का वर्णन नहीं आता इसके विरुद्ध छठे से नौवें काड तक के 'अग्निचयन' के वर्णन में याज्ञवल्क्य का नाम एक बार भी नहीं आता और उसके स्थान में एक दूसरे आचार्य शांडिल्य को प्रामाणिक तथा 'अग्निरहस्य' का चलाने वाला माना गया है, जिसका वर्णन ग्यारहवें से तेरहवें कांड तक है। शांडिल्य के अतिरिक्त इसमें गान्धारों, साल्वों और केकयों के नाम भी आते हैं, जो पश्चिमोत्तर प्रान्तों के वासी थे। इसी कांड में कई एक अनुक्रमणिकाओं के अतिरिक्त कई एक ऐसी बातों का वर्णन है, जिनका ब्राह्मणों से कुछ सम्बंध नहीं। उदाहरणार्थ कांड ग्यारह के पांचवें और चौथे अध्यायों में 'उपनयन' अध्याय पाचवें से आठवें तक 'स्वाध्याय' और कांड तेरह के आठवें अध्याय में अन्त्येष्टि संस्कार' और मृतक के स्तम्भ खड़ा करने की विधियों का वर्णन है। तेरहवें खंड में ही 'अश्वमेध यज्ञ' 'पुरुषमेध यज्ञ' और 'सर्वमेध यज्ञ' का वर्णन किया गया है। अन्त का अर्थात् चौदहवां खंड आरण्यक है, इसमें प्रवर्ग्य संस्कार का वर्णन है और इसके अन्तके ६ अध्यायों में बृहदारण्यक उपनिषद् है।

शतपथ ब्राह्मण के भौगोलिक वर्णनों से प्रगट होता है कि कुरु, पांचाल की भूमि उस समय भी ब्राह्मण सभ्यता का केन्द्र बन रही थी।

इसमें कुरुराज जनमेजय और पांचाल आरुणि का स्पष्टतः उल्लेख किया गया है। इससे यह भी प्रतीत होता है ब्राह्मण मत उस समय मध्यदेश के पूर्वीय देशों में, राजधानी अयोध्या सहित कौशल देश में और राजधानी मिथिला सहित विदेह देश मे फैल गया था। शतपथ ब्राह्मण के बाद के कांडों में यहाँ होने वाले बड़े-बड़े शास्त्रार्थों का उल्लेख किया गया है। वीर आरुणि के शिष्य याज्ञवल्क्य को इस ब्राह्मण में अध्यात्म शास्त्र पर (अध्याय छै से नौ तक छोड़ कर) बड़ा भारी प्रमाण माना गया है। इस ब्राह्मण के कई एक अंशों से इस बात की संभावना प्रगट होती है कि याज्ञवल्क्य विदेह का निवासी था। याज्ञवल्क्य को इस प्रकार प्रधानता दी जाने से प्रगट होता है शतपथ ब्राह्मण की रचना पूर्वीय देशों में हुई थी।

शतपथ ब्राह्मण में थोड़ा संकेत उस समय का भी किया गया है, जब विदेह में ब्राह्मण धर्म नहीं आया था। प्रथम कांड की एक आख्यायिका से आर्य लोगों के पूर्वीय देशों में तीन बार जाने का पता चलता है। विदेहों के पूर्व की ओर बढ़ने का कुछ अस्पष्ट सा हाल नीचे उद्धृत किये हुए शतपथ ब्राह्मण के वाक्यों में मिलता है—

(१०) माधव विदेघ के मुँह में अग्नि वैस्वानर थी। उसके कुल का पुरोहित ऋषि गोतम राहू गण था। जब यह उससे बोलता था तो माधव इस भय से कोई उत्तर नहीं देता था कि कहीं अग्नि उसके मुँह से गिर न पड़े।

(१२) फिर भी उसने उत्तर नहीं दिया। तब पुरोहित ने कहा, हे घृतस्न हम तेरा आवाहन करते हैं। (ऋग्वेद म० ५ सू० २६ ऋ० २) उसका इतना कहना था कि घृत का नाम सुनते ही अग्नि वैश्वानर राजा के मुँह से निकल पड़ी। वह उसे रोक न सका। वह उसके मुँह से निकल कर इस भूमि पर गिर पड़ी।

(१४) माधव विदेघ उस समय सरस्वती नदी पर था। वहाँ से वह (अग्नि) इस पृथ्वी को जलाते हुए पूर्व की ओर बढ़ी और ज्यों ज्यों वह जलाती हुई बढ़ती जाती थी त्यों त्यों गौतम राहू गए और विदेघ माधव उसके पीछे पीछे चले जाते थे। उसने इन सब नदियों को जला डाला (सुखा डाला)। अब वह नदी जो सदानीर (गंडक) कहलाती है उत्तरी (हिमालय) पर्वत से बहती है। इस नदी को उसने नहीं जलाया। पूर्व काल में ब्राह्मणों ने इस नदी को यही सोच कर पार नहीं किया, क्योंकि अग्नि वैश्वानर ने उसे नहीं जलाया था।

(१५) परन्तु इस समय उसके पूर्व में बहुत से ब्राह्मण हैं। उस समय उस (सदानीर) के पूर्व की भूमि बहुत करके जोती बोई नहीं जाती थी और बड़ी दलदली थी क्योंकि अग्नि वैश्वानर ने उसे नहीं चक्खा था।

(१६) परन्तु इस समय वह बहुत बोई हुई है क्योंकि ब्राह्मणों ने उसमें होमादि करके उसे अग्नि से चखवाया है। अभी भी गरमी में वह नदी उमड़ उठती है। वह इतनी ठंडी है क्योंकि अग्नि और वैश्वानर ने उसे नहीं जलाया।

(१७) माधव विदेघ ने तब अग्नि से पूछा कि मैं कहाँ रहूँ? उसने उत्तर दिया कि तेरा निवास इस नदी के पूर्व में हो। अब तक भी यह नदी कौशलों और विदेहों की सीमा है क्योंकि ये माधव की संतति है। (शतपथ ब्राह्मण १-४-१)

ऊपर के वाक्यों में हम लोगों को कल्पित कथा के रूप में अधिवासियों के सरस्वती के तट से गंडक तक धीरे-धीरे बढ़ने का वृत्तान्त मिलता है। यह नदी दोनों राज्यों की सीमा थी। कोशल लोग उसके पश्चिम में रहते थे और विदेह लोग उसके पूरब में।

अभिषेक किया इसी लिये कुरु, पाँचालों तथा वसों और उशीनरों के राजाओं को राज्यतिलक दिया जाता है और वे राजा कहलाते हैं।"

वास्तव में शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी शाखा ने ही यज्ञों का बड़ा भारी प्रचार किया जो इन पूर्व के देशों में बहुत बढ़ गया था। शतपथ ब्राह्मण में अध्वर्यु की गलतियाँ बार बार निकाली गई हैं, जो चरक शाखा का पुरोहित होता है। कृष्ण यजुर्वेद की तीन शाखाओं-कठ, कपिष्ठल और मैत्रायणीय-को चरक शाखा कहते हैं।

शतपथ ब्राह्मण मे अर्हत, श्रमण और प्रतिबुद्ध शब्द आते हैं। ऋषियों की वशावलियों मे गौतम का नाम विशेष रूप से आता है।

साँख्य दर्शन के आरम्भिक सिद्धान्तों का भी कुछ वर्णन मिलता है, और साँख्य के प्रसिद्ध आचार्य आसुरी का नाम तो कई एक स्थानों पर आता है।

कुरु राज जनमेजय का वर्णन यहाँ पहले पहल ही आता है। पाण्डवों का वर्णन कुछ न होते हुए भी अर्जुन का वर्णन किया गया है विदेह राज जनक तो इसके मुख्य आश्रयदाता है, किन्तु विदेह की गद्दी के सभी राजाओं का नाम जनक होने से यह निश्चय करना कठिन है कि यह जनक सीता के पिता ही थे। अवश्य ही ये जनक कोई महाभारत कालीन जनक रहे होंगे।

कालिदास के नाटकों के दोनों कथानक भी इसमें मिलते हैं। पुरूरवा और उर्वशी के प्रेम और वियोग की कथा, जिसका ऋग्वेद में रूपक मिल गया है, यहाँ विस्तृत रूप में वर्णन की गई है। दुष्यन्त और शकुन्तला के पुत्र भरत का वर्णन भी इसमे किया गया है, जिनके उद्धरण इसी अध्याय में आगे बताये गये हैं।

जल प्रलय की उस प्रसिद्ध कथा का भी इसमें वर्णन है जिसका कुछ वर्णन अथर्ववेद में है और जिसका महाभारत, जिंद अवस्ता तथा बाइबिल में वर्णन किया गया है। इसमें बतलाया गया है कि किस प्रकार मनु को एक छोटी सी मछली मिल गई, जिसने अपनी

से मनु को आने वाले जल-प्रलय से रक्षा करने का वचन दिया। मछली के उपदेश के अनुसार एक जहाज बनवाकर मनु, जल-प्रलय के समय उसमें बैठ गये और वही मछली उस जहाज को उत्तरी पर्वत पर ले गई, जिसके सींग से उसने अपना जहाज बाँध दिया था। फिर अपनी पुत्री के द्वारा मनु ने मनुष्य जाति की उत्पत्ति की थी।

शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार के बहुत से आख्यान और कथानक आये हैं। इसकी रचना से पता लगता है कि यह ब्राह्मण के पिछले भाग में बना है। इसकी भाषा अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक उन्नत, सुविधाजनक और स्पष्ट है। यज्ञों का वर्णन भी इसका सर्वथा विशेष पद्धति पर है। अध्यात्म विषय में भी इसमें एकत्ववाद पर अधिक जोर दिया गया है, जब कि इसका उपनिषद् भी वैदिक दर्शन शास्त्रों का उत्कृष्ट ग्रन्थ माना गया है।

अथर्ववेद का सम्बन्ध गोपथ ब्राह्मण से है। पर उसका उस संहिता से कोई प्रकट संबन्ध प्रतीत नहीं होता। यह ब्राह्मण बिलकुल अर्वाचीन प्रतीत होता है। लेख भी मिश्रित हैं। इस ब्राह्मण के दो भाग हैं। पूर्वार्द्ध में पाँच अध्याय हैं और उत्तरार्द्ध में छः अध्याय हैं। दो भाग बहुत बाद की रचनाएँ हैं, क्योंकि वह वैतान सूत्र के पश्चात् बने हैं और उनमें कोई अथर्वण आख्यायिका भी नहीं है। पूर्वार्ध में उतना अँश ही मौलिक है, जिसका किसी यज्ञ या संस्कार से संबन्ध नहीं है, अन्यथा बाकी सब शतपथ ब्राह्मण के ग्यारहवें और बारहवें काण्ड से और कुछ अंश ऐतरेय ब्राह्मण से लिये गये हैं। इस ब्राह्मण का मुख्य उद्देश्य अथर्व वेद और चौथे पुरोहित का महत्व बढ़ाना है। शिव के वर्णन, अथर्ववेद के बीसों काण्डों के वर्णन और परिष्कृत व्याकरण के नियमों के कारण इसको बहुत बाद की रचना समझा जाता है। उत्तरार्द्ध बिल्कुल ब्राह्मण के ढंग का है। उसमें वैतान श्रौतसूत्र के ढंग पर यज्ञों का वर्णन

किया गया है। इस सूत्र का और ब्राह्मणों का सम्बन्ध उलटा हो गया है। क्योंकि सूत्रों का आधार ब्राह्मण होने के स्थान में यहां ब्राह्मण का आधार सूत्र हो गया है। इसका दो तिहाई प्राचीन ग्रन्थों से लिया गया है। ऐतरेय और कौषीतकि ब्राह्मणों के विषय को मुख्य रूप से लिया गया है। मैत्रायणी और तैत्तरीय संहिताओं के भी कुछ अंश लिये गये हैं। थोड़े से अंश शतपथ और पंचविंश ब्राह्मण से भी लिये गये हैं।

अब यह देखना है कि ब्राह्मणों की कुल संख्या कितनी है। ब्राह्मणों की कुल संख्या ३५ है। जिनमें १५ प्रकाशित हो चुके हैं। दो अप्रकाशित है; परन्तु प्राप्त होते हैं। १८ ब्राह्मण ऐसे हैं जिनका साहित्य में पता चलता है, परन्तु प्राप्त नहीं हैं। ये १८ अप्राप्त ब्राह्मण इस प्रकार हैं:—

(१) चरक ब्राह्मण (यजुर्वेदीय) विश्वरूपाचार्य कृत बालक्रीडा टीका में उद्धृत, भाग प्रथम पृ० ४८, ८०। भाग द्वितीय पृ० ८६, भाग २ पृ० ८७ पर लिखा है—

'तथा अग्निष्टोमीय ब्राह्मणे चरकाणाम्'

यह ब्राह्मण चरक शाखा का प्रधान ब्राह्मण था। इसके आरण्यक का एक प्राचीन हस्त लेख लाहौर पुस्तकालय में है। यह अधिकांश में सप्त प्रपाठात्मक मैत्र्युपनिषद् से मिलता है।

(२) श्वेताश्वतर ब्राह्मण—(यजुर्वेदीय) बालक्रीडा टीका भाग १, पृ० ८ पर उद्धृत श्वेताश्वतरोपनिषद् इसी के आरण्यक का भाग प्रतीत होता है।

(३) काठक ब्राह्मण (यजुर्वेदीय) तैत्तिरीय ब्राह्मण के कुछ अन्तिम भागों को भी कठ वा काठक ब्राह्मण कहते हैं, परन्तु यह काठक ब्राह्मण उससे भिन्न है। यह चरकों के द्वादश अवान्तर विभागों में से एक है। इसके आरण्यक का कुछ हस्त लिखित

रूप में यूरोप के पुस्तकालयों में विद्यमान् है। श्रीनगर काश्मीर के एक ब्राह्मण का कहना है कि इसका हस्तलेख मिल सकता है। एफ़. ओ. श्रेडर सम्पादित "माइनर उपनिषदस्" प्रथम भाग पृ० ३१–४९ तक जो कठश्रुत्युपनिषत् छपा है, वह इसी ब्राह्मण का कोई अन्तिम भाग अथवा खिल प्रतीत होता है। इसके वचनों को यतिधर्मसंग्रह में विश्वेश्वर सरस्वती, आनन्दाश्रम पूना के संस्करण (सन १९०९) के पृ० २२ पं० २६ पृ० ७६ पं० ६ आदि पर काठक ब्राह्मण के नाम से भी उद्धृत करता है।

(४) मैत्रायणी ब्राह्मण—(यजुर्वेदीय) बौधायन श्रौतसूत्र २०,८ में उद्धृत। नासिक के वृद्ध से वृद्ध मैत्रायणी शाखा के अध्येता ब्राह्मणों ने कहा था कि उन्हें इसके अस्तित्व का कोई ज्ञान नहीं रहा। उनके कथनानुसार उनकी संहिता में ही ब्राह्मण सम्मिलित है, परन्तु पूर्वोक्त बौधायन श्रौतसूत्र का प्रमाण मुद्रित ग्रन्थ में नहीं मिला, इसलिए ब्राह्मण प्रथक ही रहा होगा। मैत्रायणी उपनिषद् का अस्तित्व भी इस ब्राह्मण का होना बता रहा है, फिर भी पूरा निर्णय होने के लिये मैत्रायणीय संहिता का पुनः छपना आवश्यक है। बड़ौदा के सूचीपत्र (सन् १९२५) सं० ५९ में कहा गया है कि उनका हस्तलेख, मुद्रित मै. सं. से कुछ भिन्न है। बालक्रीड़ा भाग २ पृ० २७ पं० ३ पर एक श्रुति उद्धृत है, उसी श्रुति को विश्वेश्वर यतिधर्म संग्रह पृ० ७६ पर मैत्रायणी श्रुति के नाम से उद्धृत करता है,

(५) भाल्लवि ब्राह्मण, बृहद्देवता ५. २३. भाषिक सूत्र ३ १५. नारद शिक्षा १. १३ महाभाष्य ४. २. १०४. में इसका मत व नामका उल्लेख है।

(६) जाबाल ब्राह्मण, (यजुर्वेदीय) जाबाल श्रुति का एक लम्बा उद्धरण बालक्रीड़ा भाग २, पृ० ६४, ६५ पर उद्धृत है। यह संभवतः ब्राह्मण का पाठ होगा। बृहज्जाबालोपनिषद् नवीन है, परन्तु जाबाल उपनिषद् प्राचीन प्रतीत होता है। इस शाखा का ब्रह्म-सूत्र (जाबालिब्रह्म) गौतम धर्मसूत्र मस्करी भाष्य के पृ० २६७, ३८६ पर उद्धृत है।

(७) पैङ्गी ब्राह्मण—इसका ही दूसरा नाम पैङ्ग्य ब्राह्मण वा पैङ्गायनि ब्राह्मण भी है। यह आपस्तम्ब श्रौतसूत्र ५, १८, ८, ५. २१ ४ में उद्धृत है। आचार्य शंकर स्वामी भी इसे शारीरिक सूत्र भाष्य में उद्धृत करते हैं। पैङ्गी कृत्य का उल्लेख महाभाष्य ४. २ ६६ में कया गया है।

(८) शाट्यायन ब्राह्मण-(सामवेदीय ?) आपस्तम्ब श्रौतसूत्र १०, १२-१३, १४ ।। २१, १३०४, १८, पुष्पसूत्र ८ ८.१८४ में उद्धृत है। सायण अपने ऋग्वेद भाष्य और ताण्ड्य ब्राह्मण भाष्य में इसे बहुत उद्धृत करता है। इसी का कल्प बालक्रीड़ा भाग १, पृ० ३८ पर उद्धृत है,

(९) कंकति ब्राह्मण 'आपस्तम्ब श्रौतसूत्र १४-२०-४ पर उद्धृत है, महाभाष्य ४.२.६६ कीलहार्न सं० पृ० २८६ पं० १२ पर कांकताः प्रयोग है, इससे भी कंकति शाखाके अस्तित्व का पता लगता है।

(१०) सौलभ ब्राह्मण-महाभाष्य ४.२.६६, ४.३.१०५, पर इसका उल्लेख है।

(११) कालबवि ब्राह्मण-(सामवेदीय) आपस्तम्ब श्रौत २०.९.९ पर उद्धृत है। पुष्पसूत्र प्रपाठक ८-८-१८४ पर भी यह उद्धृत है,

(१२) शैलालि ब्राह्मण—आपस्तम्ब श्रौत ६.४.७ पर उद्धृत है,

(१३) कौसकि ब्राह्मण, गोभिल गृह्य सूत्र ३.२.५ पर उद्धृत है, किन्तु सम्भव है कि यह धर्मस्कन्ध ब्रा०, अन्तर्यामी ब्रा० दिवाकी से ब्रा०, धिष्ण्य ब्रा०, शिशुमार ब्रा० आदि के समान यह भी किसी ब्रा० का भाग हो।

(१४) खाण्डिकेय ब्राह्मण, (यजुर्वेदीय) भाषिक सूत्र ३.२६ पर उद्धृत है।

(१५) औखेय ब्राह्मण (यजुर्वेदीय) भाषिक सूत्र ३-२६ पर उद्धृत है।

(१६) हारिद्रविक ब्राह्मण।

(१७) तुम्बरु ब्राह्मण।

(१८) आरुणेय ब्राह्मण—ये अन्तिम तीनों ब्राह्मण महाभाष्य ४.३.१०४ पर उल्लिखित हैं।

ब्राह्मणों का संकलन काल

बृहदारण्यक ४। ६। ३ तथा ६। ५। ४ के वंश ब्राह्मणों के अनुसार ब्राह्मण वाक्यों का आदि प्रवचन कर्ता ब्रह्मा माना गया है। प्रजापति, मन्वादि महर्षियों का नाम भी ब्राह्मण वाक्यों के प्रवचन कर्ताओं में लिया जाता है। कई एक ब्राह्मण अंशों के प्राचीन होने पर भी यह निश्चय करना कठिन है कि उनका वास्तविक काल क्या था। हाँ, यह कहा जा सकता है कि इन सब का संकलन महाभारत काल में कृष्ण द्वैपायन, वेदव्यास तथा उनके शिष्य प्रशिष्यों ने किया था। शतपथ आदि ब्राह्मणों में अनेक स्थलों पर उन ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पाये जाते हैं जो महाभारत काल के कुछ ही पहिले के थे, यथा—

(१) अनेन हैतेन भरतो दौःषन्तिरीजे········

तदेतद् गाथयाभिगीतम्—
अष्टासप्ततिं भरतो दौःषन्तिर्यमुनामनु,
गङ्गायाँ वृत्रघ्नेऽबध्नात् पञ्चपञ्चाशतँ हयान् ॥इति॥ ११॥
शकुन्तला नाडपित्यप्सरा भरतं दधे⋯⋯ ॥ १३ ॥
महदद्य भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः ।
दिवं मर्त्य इव बाहुभ्यां नोदापुः पञ्चमानवाः ॥इति॥ "१४"
शतपथ १३ ५.४

तथा च—

ऐन्द्रेण ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण
दीर्घतमा मामतेयो भरतं दौष्यन्तिमभिषिषेच,
⋯⋯तदप्येते श्लोका अभिगीता ।
हिरण्येन परीवृतान् कृष्णान् शुक्लदतो मृगान्,
मष्णारे भरतोऽददाच्छतं बद्धानि सप्त च ॥
भरतस्यैष दौष्यन्तेरग्निः साचिगुणे चितः
यस्मिन्सहस्रं ब्राह्मणा बद्धशो गावि भेजिरे,,
अष्टासप्ततिं भरतो दौष्यन्तिर्यमुनामनु,
गङ्गायां वृत्रघ्नेऽबध्नात् पञ्चपञ्चाशतं हयान् ,,
त्रयस्त्रिंशच्छतं राजाऽश्वान् बध्वाय मेध्यान्,
दौष्यन्तिरत्यगाद्राज्ञो मायां मायावत्तरः ॥
महाकर्म भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः,
दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोदापुः पञ्च मानवाः ॥इति॥
ऐतरेय ब्राह्मण ८.२३

इन गाथाओं—यज्ञगाथाओं—श्लोकों में वर्तमान दौष्यन्ति भरत और शकुन्तला नाम स्पष्ट महाभारत काल से कुछ ही पहिले होने वाले व्यक्तियों के हैं, अतएव इन सब ब्राह्मणों को महाभारत काल का मानना ही युक्तिसंगत है.

(२) ब्राह्मण ग्रन्थों के महाभारत कालीन होने में स्वयं महाभारत भी साक्षी है, महाभारत आदि पर्व अध्याय ६४ में लिखा है—

ब्रह्मणो ब्राह्मणानां च तथानुग्रहकाङ्क्षया,
विव्यास वेदान् यस्मात् स तस्माद्व्यास इति स्मृतः ॥ १३० ॥

वेदानाध्यापयामास महाभारतपञ्चमान्,
सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुकं चैव स्वमात्मजम् ॥१३१॥
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशंपायनमेव च,
संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः ॥१३२॥

अर्थात्—वेदव्यास के सुमन्तु, जैमिनि, वैशंपायन और पैल ये चार शिष्य थे। इन्हीं चारों को उनने वेदादि ग्रन्थ पढ़ाये। यह व्यास पाराशर्य व्यास के अतिरिक्त अन्य नहीं थे, इसका प्रमाण भी महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३२४ में है—

विविक्ते पर्वततटे पाराशर्यो महातपाः,
वेदानध्यापयामास व्यासः शिष्यान् महातपाः ॥२६॥
सुमन्तुं च महाभागं वैशंपायनमेव च,
जैमिनिं च महाप्राज्ञं पैलं चापि तपस्विनम् ॥२७॥

वैशम्पायन को ही चरक कहते हैं, काशिकावृत्ति ४।३।१०४ में लिखा है—

वैशंपायनान्तेवासिनो नव........
चरक इति वैशंपायनस्याख्या,
तत् सम्बंधेन सर्वे तदन्तेवासिनश्चरका इत्युच्यन्ते,

पुनः महाभाष्य ४.३.१०४ पर पतञ्जलि मुनि ने लिखा है,

वैशंपायनान्तेवासी कठः, कठान्तेवासी खाडायनः।
वैशम्पायनान्तेवासी कलापी,

यह शिष्यपरम्परा निम्नलिखित प्रकार से सुस्पष्ट हो जावेगी।

वैशंपायन (चरक)

(१) आलम्बि
(२) पलंग
(३) कमल
(४) ऋचाभ
(५) आरुणि
(६) ताण्ड्यक
(७) श्यामायन

(८) कठ
खाडायन

(९) कलापी
हरिद्रु तुम्बरु उलूक छगलिन्
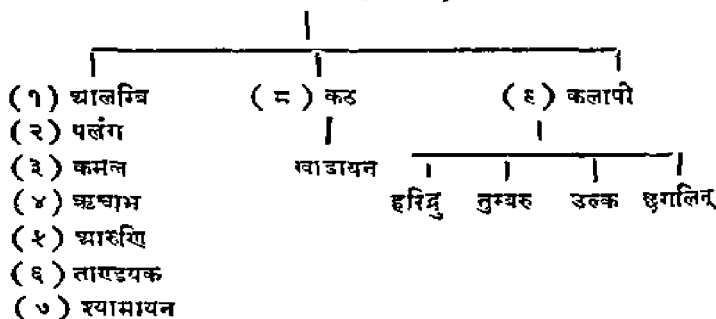
इनमें से १-३ प्राच्य; ४-६ उदीच्य और ७-९ माध्यम हैं, देखिये महाभाष्य ४।२।१३८ और काशिकावृत्ति ४।३।१०४ पूर्वोक्त नामों मे से—

(१) हारिद्रविण:,
(२) तौम्बुरविणः,
(३) आरुणिनः,

ये तीनों महाभाष्य ४।२।१०४ में ब्राह्मण ग्रन्थ प्रवचनकर्ता कहे गये हैं, अत: यह निर्विवाद है कि साम्प्रतिक सब ब्राह्मण ग्रन्थ महाभारत काल में ही संगृहीत हुए।

(३) याज्ञवल्क्य भी महाभारत कालीन ही है। महाभारत सभा-पर्व अध्याय ४ में लिखा है—

बको दाल्भ्यः स्थूलशिरा. कृष्णद्वैपायन. शुकः
सुमन्तुर्जैमिनिः पैलो व्यासशिष्यास्तथा वयम् ॥१७॥
तित्तिरिर्याज्ञवल्क्यश्च ससुतो रोमहर्षणः।

अर्थात् ये सब बड़े बड़े ऋषि महाराज युधिष्ठिर की सभा को सुशोभित कर रहे थे।

शतपथ ब्राह्मण याज्ञवल्क्य प्रोक्त है, इस विषय में काशिकावृत्ति ४।३।१०५ में लिखा है—

> ब्राह्मणेषु तावत्-भाल्लविनः, शाट्यायनिनः ऐतरेयिणः,
> ···पुराणप्रोक्तेष्विति किम्, याज्ञवल्क्यानि ब्राह्मणानि···
> याज्ञवल्क्यादयोऽचिरकाला इत्याख्यानेषु वार्ता,

जयादित्य का यह लेख महाभाष्य के विरुद्ध है। जयादित्य के संदेह का कारण कोई प्राचीन 'आख्यान' है, परंतु उससे जयादित्य का अभिप्राय नहीं सिद्ध होता। ब्राह्मण-ग्रंथों के अवान्तर भागों को भी ब्राह्मण कहते हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनेक अवान्तर ब्राह्मण अत्यंत प्राचीन हैं। उनकी अपेक्षा याज्ञवल्क्य प्रोक्त ब्राह्मण नवीन है। आख्यानान्तर्गत लेख का अभिप्राय समग्र शतपथ ब्राह्मण से नहीं प्रत्युत उसके अवान्तर ब्राह्मणों से है। शतपथ ब्राह्मण का प्रवचन तो तभी हुआ था जब कि भाल्लवि, शाट्यायन और ऐतरेय आदि ब्राह्मणों का प्रवचन हुआ था। इनमें से ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवचन कर्ता महिदास, सुमन्तु आदि से कुछ प्राचीन है. देखिये आश्वलायन गृह्यसूत्र ३।४।४। याज्ञवाल्क्य इन्हीं का सहकारी है, अतः याज्ञवल्क्य और तत्प्रोक्त शतपथ ब्राह्मण भी महाभारत-कालीन ही हैं।

यहाँ यह संदेह नहीं किया जा सकता कि महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३१९ श्लोक ३, ४ तथा अध्याय ३२३ के श्लोक २२-२३ के अनुसार याज्ञवल्क्य का सम्वाद दैवराति जनक से हुआ था, जो कि वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड सर्ग ७१ श्लोक ८ के अनुसार सीता के पिता हैं। क्योंकि दैवराति जनक अनेक हो सकते हैं। महाभारत काल में भी एक प्रसिद्ध जनक था, और उसी का वैयासकि शुक के साथ संवाद

हुआ था। दैवराति जनक वही या उससे कुछ ही पूर्वकालीन हो सकता है, क्योंकि महाभारत में इसी प्रकरण की समाप्ति पर भीष्म कहते हैं कि याज्ञवल्क्य और दैवराति जनक के सम्वाद का तथ्य उन्होंने स्वयं दैवराति जनक से प्राप्त किया था,

भीष्म उवाच—

> एतन्मयाऽऽप्तं जनकात् पुरस्तात्
> तेनापि चाप्तं नृप याज्ञवल्क्यात्,
> ज्ञानं विशिष्टं न तथा हि यज्ञा
> ज्ञानेन दुर्गं तरते न यज्ञैः ॥१०६॥

शान्तिपर्व अध्याय ३२३

शान्तिपर्व के उपदेश के समय भीष्मजी की आयु २०० वर्ष से कुछ कम ही थी। इस गणनानुसार दैवराति जनक महाभारत-युद्ध से १२० वर्ष के अन्दर अन्दर ही हो सकते हैं। अतएव शतपथ ब्राह्मण भी महाभारत काल में ही 'प्रोक्त' हुआ समझना चाहिए।

(४) शतपथ ब्राह्मण और उनका प्रवचनकर्ता याज्ञवल्क्य महाभारत कालीन ही हैं इसकी शतपथ ब्राह्मण भी साक्षी देता है, यथा—

> अथ पृषदाज्यं तदुह चरकाध्वर्यवः पृषदाज्यमेवाग्रेऽभि—
> धारयन्ति प्राण' पृषदाज्यमिति वदन्तस्तदुह याज्ञवल्क्यं चरका—
> ध्वर्यु रनुव्याजहार।

शतपथ ३ । ८ । २ । २४

ताउह चरका', नानैव मन्त्राभ्यां जुह्वति प्राणोदानौ
याऽस्यैतौ नानावीर्यौ प्राणोदानौ कुर्म इति वदन्तस्तदु तथा न कुर्यात्

शतपथ ४ । १ । २ । १९

यदि तं चरकेभ्यो वा यतो वानुब्रवीत् श० ४।२।४।१

तदु ह चरकध्वर्यवो विगृह्णन्ति, शतपथ ४।२।३।१५

प्राजापत्यं चरका आलभन्ते, शतपथ ६।२।२।१

इति ह स्माह माहित्थिर्यं चरकाः प्राजापत्ये पशावाहुरिति

शतपथ ६-१-१-१०

तदु ह चरकाध्वर्यवः। शतपथ ८।१।३।७

इत्यादि स्थलों में जो 'चरक' अथवा 'चरकाध्वयु' कहे गये हैं, वे सब वैशंपायन शिष्य हैं। वायुपुराण पूर्वार्द्ध अध्याय ६२ में भी इसी को पुष्ट किया गया है—

ब्रह्महत्या तु यैश्चीर्णा चरणाच्चरकाः स्मृताः,
वैशम्पायनशिष्यास्ते चरकाः समुदाहृताः ॥ २३ ॥

और यह हम पहिले ही बतला चुके हैं कि चरक—वैशम्पायन महाभारत कालीन था, अतः उसका वा उसके शिष्यों का उल्लेख करने वाला ग्रन्थ महाभारत काल से पहिले का नहीं हो सकता।

(५) याज्ञवल्क्य और शतपथ ब्राह्मण के महाभारत कालीन होने में एक और प्रमाण भी है—

महाराज जनक की सभा में याज्ञवल्क्य का ऋषियों के साथ जो महान् संवाद हुआ था, उसका वर्णन शतपथ काण्ड ११-१४ में है, ऋषियों में एक विदग्ध शाकल्य ११।४।६०३ था, याज्ञवल्क्य के एक प्रश्न का उत्तर न देने से उसका मूर्धा गिर गया १४।५।७।२८ यह शाकल्य ऋग्वेद का प्रसिद्ध ऋषि हुआ है, यही पदकारों में भी सर्वश्रेष्ठ था, इसका पूरा नाम देवमित्र शाकल्य था, ब्रह्मवाह सुत याज्ञवल्क्य (वायुपुराण पूर्वार्द्ध ६०।४१) के साथ इसका जो वाद हुआ था, उसका उल्लेख वायुपुराण पूर्वार्द्ध अध्याय ६० श्लोक ३२-६० में भी है, वायुपुराण के पूर्वार्द्ध अध्याय ६० के अनुसार इस देवमित्र शाकल्य

(विरुद्ध) के पूर्वोत्तर कुछ ऋग्वेदीय आचार्यों की गुरुपरम्परा का चित्र निम्नलिखित है—
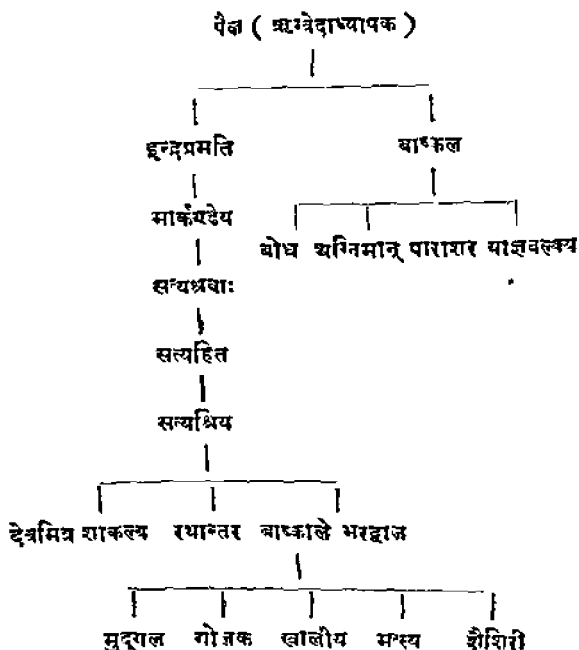
ताण्डय, दैवत, षड्विंश, मंत्र ब्राह्मण, संहितोपनिषद्, आर्षेय-वंश, समविधान, जैमिनि उपनिषद्, तलवकार, शाखायन और काल-ववि आदि अनेक ब्राह्मण ग्रन्थ बन गये।

धीरे-धीरे वेद का वास्तविक महत्व नष्ट हुआ और स्वार्थियों ने यज्ञ के नाम पर भयानक हिंसा और व्यभिचार सम्बन्धी पाप करने कर

ये। हजारों वर्ष तक ये रोमांचकारी कार्य होते रहे— अन्त में जैन और
द्ध धर्म का उदय हुआ। ये दोनों ही धर्म क्षत्रियों की ब्राह्मण तथा
की हिंसामयी यज्ञों के विरुद्ध क्रान्ति के परिणाम थे। इन दोनों
र्मों ने वैदिक धर्म पर इतने जोर का आघात किया कि ब्राह्मणों की
क्ति छिन्न-भिन्न हो गई। उन्होंने वेदांगों का निर्माण किया। शिक्षा और
ल्प बनाये। बौद्धों की देखादेखी कल्प-साहित्य प्रायः सूत्रों में ही बनाया।
सके चार विभाग किये गये, श्रौत सूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्व-
त्र। एक-एक प्रकार के सूत्रों को अनेक-अनेक आचार्यों ने लिखा
जनमें से बहुत से ग्रन्थ अद्यावधि उपलब्ध हैं।

श्रौतसूत्रों में यज्ञों के विधान की विधियों का वर्णन किया गया,
गृह्यसूत्रों में गर्भादानादि १८ गृह्य संस्कारों का वर्णन किया गया, धर्म-
सूत्रों में दैनिक जीवन व्यतीत करने, उत्तम लोक की प्राप्ति और
पुण्य पाप के नियमों का वर्णन किया गया, तथा शुल्वसूत्रों में यज्ञ-
शाला आदि बनाने की विधियों का वर्णन किया गया।

तीसरे वेदांग व्याकरण में लौकिक और वैदिक संस्कृत भाषाओं के
नियमों का वर्णन, चौथे वेदांग में निघण्टु में वैदिक कोष का वर्णन,
(निरुक्त इसी निघण्टु की टीका है) पांचवें वेदांग छन्द में लौकिक और
वैदिक छन्दों का वर्णन तथा छटें वेदांग ज्योतिष में यज्ञों के समय के
योग्य तारा, नक्षत्र आदि का वर्णन है।

(३) गो पथ ब्राह्मण पूर्वभाग १।९ से भी यही सिद्ध होता है।

" यान् मन्त्रानपश्यत् स आथर्वणो वेदोऽभवत्। "

(४) ब्राह्मण ग्रन्थों में जहाँ वेदों की उत्पत्ति लिखी है वहाँ
ब्राह्मणों की उत्पत्ति का नाम भी नहीं है, जिससे प्रगट होता है कि
ब्राह्मण वेद नहीं है। उदाहरणार्थ—

" ··· ··· स एतानि त्रीणि ज्योतींष्यभ्यतपत सोऽग्नेरेवर्चोऽसृजत
वायोर्यजूंष्यादित्यात् सामानि, स एतांत्रयीं विद्यामभ्यतपत।··· ···।

अथैतस्या एव त्रय्यै विद्यायै तेजोरसं प्रावृहत्, एतेषामेव वेदानां भिष-ज्यायै स भूर्भुवः स्वरित्येतां व्याहृतीः प्रावृहत् ...... । कौषीतकि ब्रा० ६।१०

❀ ❀ ❀ ❀

" स इमानि त्रीणि ज्योतींष्यभितताप, तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः ॥३॥

स इमांस्त्रीन् वेदानभितताप तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त भूरित्यृग्वेदात् ...... ॥४॥ शतपथ ११।५।८ "

स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत्, तासां तप्यमानानां रसान् प्रावृहत्, अग्नेर्ऋचो वायोर्यजूंषि सामान्यादित्यात् ॥ २ ॥

स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत्, तस्यास्तप्यमानाया रसान् प्रावृहत् भूरिति ऋग्भ्यः ॥३॥ छान्दोग्य उ० ४।१७

अतएव इनसे भी यही सिद्ध होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थ संहिताओं के साथ साथ प्रगट नहीं हुए।

(५) शतपथ ब्राह्मण १४।६।१०।६ में स्पष्ट रूप से वेदों से उपनिषदों को पृथक् माना है—

" ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि वाचैव सम्राट् प्रज्ञायन्ते "

लगभग ऐसा ही पाठ शतपथ १४।५।४।१० में भी आता है। यहाँ सूत्र के आदि के समान उपनिषदों को भी वेदों से पृथक् माना है, अतएव जब ब्राह्मण ग्रन्थ स्वयं ही ब्राह्मणों के भाग उपनिषद् को वेद नहीं मानते तो ब्राह्मण स्वयं किस प्रकार वेद हो सकते हैं।

पाणिनीय सूत्र

शौनकादिभ्यश्छन्दसि ४।३।१०६

से हम जानते हैं कि शौनक किसी शाखा वा ब्राह्मण का प्रवचन कर्ता है, सम्भवतः यह शाखा आथर्वणों की थी, आश्वलायन [

शिष्य था, शौनक शिष्य होने से ही आश्वलायन अपने श्रौतसूत्र वा गृह्यसूत्र के अन्त में—नमः शौनकाय नमः, शौनकाय लिखा है।

शाखाप्रवर्तक होने से शौनक व्यास का समीपवर्ती है, अतएव महिदास ऐतरेय भी कृष्ण द्वैपायन व्यास से निकट ही रही है, इस महिदास ऐतरेय का प्रवचन होने से ऐतरेय ब्राह्मण महाभारत कालीन है, और इसी महिदास का उल्लेख करने से छान्दोग्य उपनिषद् का ब्राह्मण भी महाभारत-कालीन है, उपनिषद् भाग कुछ पीछे का भी हो सकता है, क्योंकि याज्ञवल्क्यादि ऋषियों ने एक दिन में ही तो सारा ब्राह्मण कह नहीं दिया था, इसके प्रवचन में कई-कई वर्ष लगे होंगे, इससे प्रतीत होता है कि ताण्ड्य आदि ऋषि जब छान्दोग्य आदि उपनिषदों को अभी कर रहे तो महिदास ऐतरेय का देहान्त हो चुका होगा, महिदास इन दूसरे ऋषियों की अपेक्षा कुछ कम ही जीवित रहे होंगे।

जैमिनि उपनिषद् ब्राह्मण ४।२।११ के निम्न लिखित वाक्य की भी यही संगति है—

एतद्ध तद्विद्वान् ब्राह्मण उवाच महिदास ऐतरेयः। ... ..., स ह षोडशशतं वर्षाणि जिजीव।

ऐतरेय आरण्यक ऐतरेय ब्राह्मण का ही अन्तिम भाग है, उसमें भी महिदास ऐतरेय का नाम आया है—

एतद्ध स्मवै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः। २।१।८

जिससे हमारे पूर्व कथन की पुष्टि होती है।

यहाँ यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की है कि *प्राचीन ग्रन्थ*-कार अपना नाम उपरोक्त प्रकार से भी ग्रन्थ में दे दिया करते थे, शतपथ ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य ने, कामसूत्रों में वात्स्यायन ने और वेदान्त सूत्रों में बादरायण ने इसी प्रकार अपने नाम का प्रयोग किया है। खोजने पर और भी सैंकड़ों उदाहरण ऐसे मिल सकते हैं।

यहाँ एक बात और भी स्मरण रखने की है कि महिदास ऐतरेय की अवस्था ' षोडशं वर्षशत ' एकसौ सोलह वर्ष थी न कि सोलहसौ वर्ष, क्योंकि शङ्कर आदि ने भी इसका यही अर्थ लिया है और यही अर्थ संभव भी प्रतीत होता है, इसके अतिरिक्त छान्दोग्य के इस प्रकरण में पुरुष को यज्ञरूप मान कर उसकी सवनों से तुलना की है। तीनों सवनों के कुल वर्ष भी २४+४४×४८ = ११६ ही होते हैं, अतः महिदास ऐतरेय की आयु ११६ वर्ष ही थी।

(१०) सामविधान ब्राह्मण ३।६।३ में एक वंश कहा है, वह निम्न लिखित प्रकार से है—

(१) प्रजापति
|
(२) बृहस्पति
|
(३) नारद
|
(४) विश्वक्सेन
|
(५) व्यास पाराशर्य
|
(६) जैमिनि
|
(७) पौष्पिण्ड्य
|
(८) पाराशर्यायण
|

(६) बादरायण
|
(१०) ताण्डि
|
(११) शाट्यायनि

इन्हीं अन्तिम दो व्यक्तियों ने ताण्ड्य और शाट्यायन ब्राह्मणों का प्रवचन किया था, ये आचार्य पाराशर्य व्यास से कुछ ही पीछे के हैं, अतः इनके कहे हुए ब्राह्मण ग्रन्थ भी महाभारत-कालीन ही हैं, संभवतः शतपथ ६।६।२।२५ में—

अथ ह स्माह ताण्ड्यः

जिस ताण्ड्य का कथन है, वह इसी का सम्बन्धी है।

इस प्रकार अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणों का प्रवचन महाभारत काल में ही हुआ है, अब जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि वैदिक सूक्तों और ब्राह्मणों की लम्बी अनादि अनन्त थोथी बातों में क्या तारतम्य है तो हमारे सामने तत्कालीन समाज की वस्तुस्थिति सन्मुख आ जाती है। वह काल जब वे आर्य लोग जो केवल आकाश, सूर्य और प्रभात को देखकर उन पर मोहित होते थे, विस्तृत जाति और जनपद निर्माण कर चुके थे—प्रजापत्ति, राज्य और नागरिकता के सभी स्थूल उपकरण निर्माण कर चुके थे तब वे केवल वृष्टि के देवता इन्द्र की अथवा प्रभात की देवी उषा की स्तुति सीधे साधे ढंग से कैसे करते रहते? उनमें अब आडम्बर और रूढ़ियों के साथ साथ प्रमाद और सांसारिकता बढ़ गई थी। अब सायंकाल के अर्घ्य से लेकर बड़े-बड़े विधान के राजसूय और अश्वमेध-यज्ञों का अनुष्ठान होता था जो वर्षों में समाप्त होता था। यज्ञों के नियम, छोटी-छोटी बातों का गुरुत्व, और उद्देश्य-तुच्छ रीतियाँ अब मनुष्यों के उन स्वच्छ हृदयों में जिनमें कभी

के निर्मल जल धरती में पड़ने पर धूल मिल जाती है। इसलिए ब्राह्मणों की लिखने की प्रणाली में बड़ा अन्तर उत्पन्न हो गया।

ऐसा ही योरोप के साहित्य का इतिहास भी तो साक्षी देता है? क्यों योरोप के मध्यकाल के इतिहास और कल्पित कथाएँ उसी प्रणाली पर नहीं बनाई गयीं जिस प्रणाली में चौदहवीं शताब्दि और पन्द्रहवीं शताब्दि में ग्रन्थों का निर्माण हुआ था। क्यों ह्यूम और गिबन ने मध्य-काल की शैली का अनुसरण नहीं किया। स्काट ने ही क्यों मध्यकाल की शैली का अनुसरण नहीं किया? इनके वर्णित विषय तो एक ही थे।

यह स्पष्ट है कि महारानी एलिजाबेथ के शासन काल और शेक्स-पियर और बेकन के साहित्य के बाद मध्यकाल के योरोपियन साहित्य प्रणाली में लिखना असम्भव था। स्पष्ट था कि लोगों की बुद्धि का विकास हुआ था। वर्तमान तर्कशास्त्र उत्पन्न हो रहा था—वाणिज्य-व्यापार शिल्प और समुद्रीय यातायात में क्रान्ति हो रही थी—यही तो योरोपीय साहित्य के सृष्टि परिवर्तन का इतिहास है। ऋग्वेद के सूक्तों में केवल पंजाब का उल्लेख है—सभी यहाँ सामाजिक संस्कारों और यज्ञों का स्थान केवल सिन्धु तट है। या उसकी शाखा सरस्वती।

परन्तु ब्राह्मणों में आधुनिक दिल्ली के आसपास प्रबल कुरुओं का आधुनिक कन्नौज के आसपास के देश में प्रबल पांचालों का, 'उत्तराखंड' में विदेहों का, अवध में कोशलों का तथा आधुनिक बनारस के आसपास काशियों का उल्लेख मिलता है। इन्होंने बड़े-बड़े आडम्बरों से यज्ञों को किया और उनका प्रचार किया। इनमें अजातशत्रु, जनक, जनमेजय, जैसे प्रतापी राजा हुये। ब्राह्मणों में हम इन्हीं की सभ्यता और इन्हीं का उल्लेख पाते हैं। पंजाब मानो भूल गया था। दक्षिण अभी ज्ञात न था। या उसे लोग जंगली मनुष्यों तथा पशुओं की भूमि समझते थे। परन्तु अन्त में सूत्र ग्रन्थों में तो हमें दक्षिण के बड़े बड़े राज्यों का जिक्र मिलता है।

आरण्यक ब्राह्मणों के पीछे का साहित्य है। और इन्हें ब्राह्मणों के अन्तिम अंश समझे जा सकते हैं। सायण ने लिखा है कि उन्हें इसलिए आरण्यक कहा गया था कि वे वन में पढ़े जाते थे और ब्राह्मण उन यज्ञों में प्रयोग किये जाते थे कि जिन्हें गृहस्थ किया करते थे।

इन आरण्यकों का महत्त्व इसलिए है कि वे प्रसिद्ध धार्मिक विचारों के विशेष भण्डार हैं जो उपनिषद् कहलाये। ब्राह्मण ग्रन्थों के पीछे कपिल और बुद्ध के प्रौढ़ विचारों का प्रचार होने पर फिर ब्राह्मणों की थोथी-निरर्थक और बेहूदी बकवाद जीवित रहना असम्भव था। उस समय भारतवासियों के हृदयों में एक नया प्रोत्साहन हो रहा था। [विन्ध्याचल के आगे एक नई भूमि का पता लग रहा था, यह दक्षिण पथ था। महात्मा अगस्त्य आर्यों को यह पथ दिखा चुके थे। उत्साह भक्ति और विवेचना से परिपूर्ण उपनिषद् लिखे जा रहे थे। जो ब्राह्मणों के प्रबल विरोधी थे। कपिल ने जो प्रकाण्ड दार्शनिक और तत्त्वदर्शी महासत्व था। अपने प्रगाढ़ पाण्डित्य से भारतवर्ष भर में हलचल मचा दी थी और महान् बुद्ध अपने दुःखवाद की समस्या को उच्च आत्मवाद के रूप में—उस ब्राह्मण धर्म और उसके पाप से ऊबी और प्यासी जनता को प्रदान करने लगे थे।

फलतः ब्राह्मणों का कोप हुआ। विस्तृत और अर्थ विहीन नियमों को लोगों ने ठुकरा दिया। तब फिर से सभी धर्म और समाज के नियम संक्षेप से लिखे गये। संक्षेप में लिखना—उन विस्तृत ब्राह्मणों से ऊबे हुए मनुष्यों के लिए एक कला बन गई। फलतः गूढ़ दार्शनिक विषयों का निर्माण हुआ। इस प्रकार ब्राह्मणों के आडम्बरमय ताल पर सूत्र ग्रन्थों के विवेकमय काल ने बड़ी विजय प्राप्त की।

---

७ वाँ अध्याय

ब्राह्मण काल का सामाजिक-जीवन

उपनिषदों से और कहीं कहीं ब्राह्मणों से भी यह प्रकट होता है कि इस समय ब्राह्मणों और क्षत्रियों में श्रेष्ठता की स्पर्धा चल रही थी। ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के यज्ञविधानों में फँसे थे—तब क्षत्रियों ने उपनिषद् का मूलतत्व ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिया था—यह ब्रह्मज्ञान ब्राह्मणों को नहीं बताया जाता था—आवश्यकता पड़ने पर छिपाया जाता था—ऐसे मनोरंजक उदाहरण हम नीचे पेश करते हैं—

विदेह जनक की भेंट कुछ ऐसे ब्राह्मणों से हुई जो कि अभी आये थे। ये श्वेतकेतु आरुणेय सोमसुष्म सत्ययज्ञ, और याज्ञवल्क्य थे। उसने पूछा—"क्या तुम अग्निहोत्र की विधि जानते हो ?"

तीनों ब्राह्मणों ने अपनी शक्ति और बुद्धि के अनुसार उत्तर दिए परन्तु किसी के उत्तर ठीक न थे। याज्ञवल्क्य का उत्तर यथार्थ बात के निकट था परन्तु वह पूर्ण न था। जनक ने उनसे यही कहा और रथ में बैठकर चल दिया।

ब्राह्मणों ने कहा—"इस राजन्य ने हम लोगों का अपमान किया है।" याज्ञवल्क्य रथ पर चढ़कर राजा के पीछे गया और शंका निवारण की। (शतपथ ११ । ४ । २) अबसे जनक ब्राह्मण समझा गया। (शत ब्रा० ११ । ६ । २१)

श्वेतकेतु आरुणेय पांचालों की एक राजसभा में गया। प्रवाहन क्षत्रिय ने उससे पाँच प्रश्न किये पर वह एक का भी उत्तर न दे सका। तब राजा ने उसे मूर्ख कहकर भगा दिया—वह पिता के पास आया और कहा—"पिता ! उस राजन्य ने मुझसे पाँच प्रश्न किये

का भी उत्तर न दे सका।" उसके पिता गौतम ने कहा—"पुत्र ! यह ब्रह्मविद्या हम ब्राह्मणों को प्रकट नहीं है।" दूसरे दिन वह राजा के पास गया और शिष्य की तरह समिधा लेकर सन्मुख बैठा-राजा ने कहा—"हे गौतम ! यह ज्ञान तुम्हारे प्रथम और किसी भी ब्राह्मण ने नहीं प्राप्त किया था इसलिए ब्राह्मणों में सब से प्रथम तुम्हीं को मैं यह ज्ञान प्रदान करता हूँ। यह विद्या केवल क्षत्रियों ही की थी और तब गौतम ने उसे वह ज्ञान दिया।

(छान्दोग्य० उप० ५ । ३)

इसी उपनिषद् में एक दूसरे स्थान पर इसी प्रवाहन ने दो घमण्डी ब्राह्मणों को निरुत्तर करके उन्हें आत्मा का ज्ञान बताया था। शतपथ ब्राह्मण (१० । ६ । १ । १) में और छान्दोग्य उप० (५ । २) में एक ही कथा है—वह इस प्रकार है कि पाँच ब्राह्मणगृहस्थों और वेदान्तियों में इस बात की जिज्ञासा हुई कि 'आत्मा क्या है? और ईश्वर क्या है ?' वे उद्दालक आरुणी के पास गये। आरुणी को भी इस विषय में सन्देह था ? इसलिये वह अश्वपति कैकय राजा के पास उन्हें ले गया जिसने उन्हें सादर ठहराया। वे दूसरे दिन हाथ में समिधाएँ लिये हुये राजा के सन्मुख शिष्य की भाँति गये और उसने वह ज्ञान प्रदान किया।

कौशीतकि उपनिषद (१ । १) में लिखा है कि उद्दालक आरुणी और उसका पुत्र श्वेतकेतु दोनों हाथ में समिधाएँ लिये हुए चित्रगांगायनी राजा के पास गये और समाधान किया।

कौशीतकि उपनिषद् (४) में प्रसिद्ध विद्वान् गार्ग्यबालाकि और काशियों के विद्वान राजा अजातशत्रु के वाद विवाद के विषय में एक प्रसिद्ध कथा लिखी है। इस घमण्डी ब्राह्मण ने राजा को ललकारा परन्तु शास्त्रार्थ में हार गया। तब अजातशत्रु ने कहा हे बालाकि—तुम केवल इतना ही ज्ञान रखते हो ? उसने कहा केवल इतना ही। तब अजातशत्रु ने कहा—तुमने मुझे व्यर्थ ही यह कहकर ललकारा कि—क्या मैं तुम्हें

ईश्वर का ज्ञान दूं। हे बालाकि, वह जो सब वस्तुओं का कर्ता है जिनका तुमने वर्णन किया—वह जिसकी यह सब माया है केवल उसी का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

तब बालाकि अपने हाथ में ईंधन लेकर यह कहता हुआ आया 'क्या मैं आपके निकट शिष्य की भाँति आऊं? तब अजातशत्रु ने उसे उपदेश दिया।

यह कथा-तथा श्वेतकेतु आरुणेय और प्रवाहन जैवली की कथा भी बृहदारण्यक उपनिषद् में दी गई है।

इनके सिवा उपनिषदों में ऐसे अनगिनत वाक्य हैं जो इस बात को प्रमाणित करते हैं कि क्षत्रिय सच्चे धर्म ज्ञान के सिखानेवाले थे।

वैदिक काल की समाप्ति होने तक आर्यों ने बड़े २ राज्य स्थापित कर लिये थे—इस बात का पिछले अध्यायों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से पता लग जायगा। गंगा और जमुना के द्वावे में आर्यों के बस जाने के उपरान्त ४। ५ सौ वर्षों तक न तो इन्हें युद्ध करने पड़े, न कोई विकट यात्रा करनी पड़ी फलतः वे कृषि-शिल्प और विनिमय में लगे और कई सुगठित राज्यों की नींव डाल सके—जो सर्वथा शान्त और आदर्श राज्य थे। एक राजा ने अपने राज्य की सुव्यवस्था का वर्णन इस ढंग से किया है—

'मेरे राज्य में कोई चोर, कंजूस, शराबी, अग्निहोत्र न करनेवाला, मूर्ख वा व्यभिचारी स्त्री पुरुष नहीं है। (छान्दोग्य० उ० ५। २) ऐसे शब्द कहना किसी भी राजा के लिए अति महत्वपूर्ण थे। परन्तु जब हम देखते हैं कि ये राजा लोग उच्च कोटि के अध्यात्मतत्व के ज्ञाता गुरु और विद्वानों में अपना समस्त समय व्यतीत करनेवाले थे—तब हमें इस विषय में सन्देह नहीं रह जाता कि उस समय की प्रजा की दशा ऐसी ही होगी जैसा कि अश्वपति कैकय का वाक्य घोषित करता है।

इस प्रकार वैदेशिक युद्धों और संघर्षों से दूर रह कर आर्यों ने जहाँ ऐसे व्यवस्थित और सुन्दर राज्य बनाये वहाँ उन्होंने एक

किया—वह यह कि उनमें जातीय कट्टरता और संकीर्णता उत्पन्न हो गई। यज्ञ कराना एक पैतृक व्यवसाय हो गया और पीछे से वही एक जाति या वर्ण के रूप में बदल गया। धार्मिक रीतियों का आडम्बर बहुत अधिक बढ़ गया था। पुरोहितों के कृत्यों को राजा लोग स्पर्धा से करते थे—स्पर्धा से दान देते थे—इसलिए उनका मान सर्व साधारण में खूब हो गया था। वे बेटी व्यवहार परस्पर करने लगे थे परन्तु अन्य कुल की कन्या कृपापूर्वक ले लेते थे पर देते नहीं थे। यही दशा राजाओं की हुई। उन्होंने भी अपना एक वर्ण सुगठित कर लिया और बेटी व्यवहार में वही नियम प्रचलित कर लिया। विदेह कोशल आदि के राजा—राज्य सत्ता, गठ और ब्रह्मज्ञान के कारण प्रजा की दृष्टि में देव-तुल्य माने जा रहे थे। ऐसी दशा में उनकी कन्याएँ माँगने का साहस कौन करता? परन्तु ब्राह्मण धन और सम्मान में उनकी बराबरी के व्यक्ति थे। उनके साथ बेटी व्यवहार उनका प्रथम अबाध रूप से चलता रहा पीछे ब्राह्मणों ने जब क्षत्रियों पर प्रधानता प्राप्त की तब उन्होंने क्षत्रियों को कन्याएँ देना बन्द कर दिया।

यह बात तो स्पष्ट होती है कि इस काल में जो वर्णभेद हुआ वह व्यवसाय प्रधान हुआ। व्यवसायों की भिन्नता ही उसका कारण थी। वायु पुराण में लिखा है कि—आदि वा कृत युग में जाति भेद नहीं था और इसके उपरान्त ब्रह्मा ने मनुष्यों के कार्य के अनुसार उनमें भेद किया। " उनमें से जो लोग शासन करने योग्य थे और लड़ाई भिड़ाई के काम में उद्यत थे उन्हें औरों की रक्षा करने के कारण उसने क्षत्री बनाया। वे निःस्वार्थी लोग जो उनके साथ रहते थे, सत्य बोलते थे, और वेदों का उच्चारण भली भाँति करते थे ब्राह्मण हुए। जो लोग पतले दुर्बल थे, किसानों का काम करते थे, भूमि जोतते बोते थे, और उद्यमी थे; वे वैश्य अर्थात् कर्षक और जीविका उत्पन्न करनेवाले हुए। जो लोग सफाई करनेवाले थे और नौकरी करते थे और जिनमें बहुत ही कम

बल वा पराक्रम था वे शूद्र कहलाए। " ऐसे ही ऐसे वर्णन और पुराणों मे पाए जाते है।

रामायण अपने आधुनिक रूप मे बहुत पीछे के काल में बनाई गई थी। जैसा कि हम ऊपर दिखला चुके है। उत्तर काण्ड के १४ वे अध्याय मे लिखा है कि कृत युग मे केवल ब्राह्मण ही लोग तपस्या करते थे; त्रेता युग मे क्षत्री लोग उत्पन्न हुए और तब आधुनिक चार जातियाँ बनी। इस कथा की भाषा का ऐतिहासिक भाषा में उल्था कर डालने से इसका यह अर्थ होता है कि वैदिक युग मे हिन्दू आर्य लोग संयुक्त थे और हिंदुओं के कृत्य करते थे परन्तु ऐतिहासिक काव्य काल मे धर्माध्यक्ष और राजा लोग जुदे होकर जुदी-जुदी जाति के हो गये और जन साधारण भी वैश्यो और शूद्रों की नीचस्थ जातियों में बँट गये।

हम यह भी देख चुके है कि महाभारत भी अपने आधुनिक रूप मे बहुत पीछे के समय का ग्रन्थ है। परन्तु उसमे भी जाति की उत्पत्ति के प्रत्यक्ष और यथार्थ वर्णन पाये जाते है। शान्ति पर्व के १८८ वें अध्याय में लिखा है कि " लाल अङ्ग वाले द्विज लोग जो सुख भोग मे आसक्त क्रोधी और साहसी थे और अपनी यज्ञादि की क्रिया को भूल गये थे, वे क्षत्री के वर्ण मे हो गये। पीले रंग के द्विज लोग जो गौओ और खेतीबारी से अपनी जीविका पालते थे और अपनी धार्मिक क्रियाओ को नहीं करते थे वे वैश्य वर्ण मे हो गये। काले द्विज लोग जो अपवित्र हुए, झूठे और लालची थे और जो हर प्रकार के काम करके अपना पेट भरते थे, शूद्र वर्ण के हुए। इस प्रकार द्विज लोग अपने अपने कर्मों के अनुसार जुदे होकर भिन्न-भिन्न जातियों में बट गये। "

इन वाक्यों के तथा ऐसे ही दूसरे वाक्यों के लिखनेवाले निःसन्देह इस कथा को जानते थे कि चारों जातियों की उत्पत्ति ब्रह्मा की देह के चार भागों से हुई है। परन्तु उन लोगो ने इसे स्वीकार न करके इसे कवि का अलंकारमय वर्णन समझा है। जैसी कि वह यथार्थ में।

वे बराबर इस बात को लिखते हैं कि पहिले पहल जातियाँ नहीं थी और वे बहुत ही अच्छा तथा न्यायसंगत अनुमान करते हैं कि काम-काज और व्यवसाय के भेद के कारण पीछे से जाति भेद हुआ। अब हम इस प्रसंग को छोड़ कर इस बात पर थोड़ा विचार करेंगे कि ऐतिहासिक काव्य काल में जाति भेद किस प्रकार था।

हम ऊपर कह चुके हैं पहिले पहल जाति भेद गंगा के तटों के प्रांत-वासियों ही में हुआ। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि इस रीति के बुरे फल तब तक दिखायी नहीं दिये और न तब तक दिखायी दे ही सकते थे जब तक कि हिन्दू लोगों के स्वतन्त्र जाति होने का अन्त नहीं हो गया। ऐतिहासिक काव्य काल में भी लोग ठीक ब्राह्मणों क्षत्रियों की नाईं धर्म विषयक ज्ञान और विद्या सीखने के अधिकारी समझे जाते थे और ब्राह्मणों क्षत्रियों और वैश्यों में किसी-किसी अवस्था में परस्पर विवाह भी हो सकता था। इसलिए प्राचीन भारतवर्ष का इतिहास पढ़ने-वाले इस जातिभेद की रीति के आरम्भ होने के लिए चाहे कितना ही अफसोस क्यों न करें पर उन्हें याद रखनो चाहिए कि इस रीति के बुरे फल भारतवर्ष में मुसलमानों के आने के पहिले दिखायी नहीं पड़े थे।

श्वेत यजुर्वेद के सोलहवें अध्याय में कई व्यवसायों के नाम मिलते हैं जिससे कि उस समय के समाज का पता लगता है जिस समय इस अध्याय का संग्रह किया गया था। यह बात तो स्पष्ट है कि इसमें जो नाम दिए हैं वे जुदे-जुदे व्यवसायों के नाम हैं कुछ जुदी-जुदी जातियों के नहीं है। जैसे २० और २२ कण्डिका में भिन्न-भिन्न प्रकार के चोरों का उल्लेख है और २६ वीं में घोड़ सवारों, सारथियों और पैदल सिपाहियों का। इसी प्रकार से २७ वीं कण्डिका में जो बढ़इयों, रथ बनानेवालों कुम्हारों और लुहारों का उल्लेख है वे भी भिन्न-भिन्न कार्य करनेवाले हैं कुछ भिन्न जातियाँ नहीं हैं। उसी कण्डिका में निषाद और दूसरे-दूसरे लोगों का भी वर्णन है। यह स्पष्ट है कि ये लोग यहाँ की आदि देशवासिनी

बल या पराक्रम था वे शूद्र कहलाए।" ऐसे ही ऐसे वर्णन और पुराणों में पाए जाते है।

रामायण अपने आधुनिक रूप में बहुत पीछे के काल में बनाई गई थी। जैसा कि हम ऊपर दिखला चुके है। उत्तर काण्ड के १४ वें अध्याय मे लिखा है कि कृत युग में केवल ब्राह्मण ही लोग तपस्या करते थे, त्रेता युग में क्षत्री लोग उत्पन्न हुए और तब आधुनिक चार जातियाँ बनीं। इस कथा की भाषा का ऐतिहासिक भाषा में उल्था कर डालने से इसका यह अर्थ होता है कि वैदिक युग में हिन्दू आर्य लोग संयुक्त थे और हिंदुओं के कृत्य करते थे परन्तु ऐतिहासिक काव्य काल में धर्माध्यक्ष और राजा लोग जुदे होकर जुदी-जुदी जाति के हो गये और जन साधारण भी वैश्यो और शूद्रों की नीचस्थ जातियों मे बँट गये।

हम यह भी देख चुके है कि महाभारत भी अपने आधुनिक रूप में बहुत पीछे के समय का ग्रन्थ है। परन्तु उसमें भी जाति की उत्पत्ति के प्रत्यक्ष और यथार्थ वर्णन पाये जाते हैं। शान्ति पर्व के १८८ वें अध्याय में लिखा है कि "लाल अङ्ग वाले द्विज लोग जो सुख भोग में आसक्त क्रोधी और साहसी थे और अपनी यज्ञादि की क्रिया को भूल गये थे, वे क्षत्री के वर्ण में हो गये। पीले रंग के द्विज लोग जो गौओं और खेती-बारी से अपनी जीविका पालते थे और अपनी धार्मिक क्रियाओं को नहीं करते थे वे वैश्य वर्ण मे हो गये। काले द्विज लोग जो अपवित्र दुष्ट, झूठे और लालची थे और जो हर प्रकार के काम करके अपना पेट भरते थे, शूद्र वर्ण के हुए। इस प्रकार द्विज लोग अपने अपने कर्मो के अनुसार जुदे होकर भिन्न-भिन्न जातियों में बट गये।"

इन वाक्यों के तथा ऐसे ही दूसरे वाक्यों के लिखनेवाले नि:सन्देह इस कथा को जानते थे कि चारों जातियों की उत्पत्ति ब्रह्मा की देह के चार भागों से हुई है। परन्तु उन लोगों ने इसे स्वीकार न करके इसे कवि का अलंकारमय वर्णन समझा है। जैसी कि वह यथार्थ में है भी।

वे बराबर इस बात को लिखते हैं कि पहिले पहल जातियाँ नहीं थीं और वे बहुत ही अच्छा तथा न्यायसंगत अनुमान करते हैं कि काम-काज और व्यवसाय के भेद के कारण पीछे से जाति भेद हुआ। अब हम इस प्रसंग को छोड़ कर इस बात पर थोड़ा विचार करेंगे कि ऐतिहासिक काव्य काल में जाति भेद किस प्रकार था।

हम ऊपर कह चुके हैं पहिले पहल जाति भेद गंगा के तटों के प्रांत-वासियों ही में हुआ। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि इस रीति के बुरे फल तब तक दिखायी नहीं दिये और न तब तक दिखायी दे ही सकते थे जब तक कि हिन्दू लोगों के स्वतन्त्र जाति होने का अन्त नहीं हो गया। ऐतिहासिक काव्य काल में भी लोग ठीक ब्राह्मणों क्षत्रियों की नाईं धर्म विषयक ज्ञान और विद्या सीखने के अधिकारी समझे जाते थे और ब्राह्मणों क्षत्रियों और वैश्यों में किसी-किसी अवस्था में परस्पर विवाह भी हो सकता था। इसलिए प्राचीन भारतवर्ष का इतिहास पढ़ने-वाले इस जातिभेद की रीति के आरम्भ होने के लिए चाहे कितना ही अफसोस क्यों न करें पर उन्हें याद रखनी चाहिए कि इस रीति के बुरे फल भारतवर्ष में मुसलमानों के आने के पहिले दिखायी नहीं पड़े थे।

श्वेत यजुर्वेद के सोलहवें अध्याय में कई व्यवसायों के नाम मिलते हैं जिससे कि उस समय के समाज का पता लगता है जिस समय इस अध्याय का संग्रह किया गया था। यह बात तो स्पष्ट है कि इसमें जो नाम दिए हैं वे जुदे-जुदे व्यवसायों के नाम हैं कुछ जुदी-जुदी जातियों के नहीं है। जैसे २० और २२ कण्डिका में भिन्न-भिन्न प्रकार के चोरों का उल्लेख है और २६ वीं में घोड़ सवारों, सारथियों और पैदल सिपाहियों का। इसी प्रकार से २७ वीं कण्डिका में जो बढ़इयों, रथ बनानेवालों कुम्हारों और लुहारों का उल्लेख है वे भी भिन्न-भिन्न कार्य करनेवाले हैं कुछ भिन्न जातियाँ नहीं हैं। उसी कण्डिका में निषाद और दूसरे-दूसरे लोगों का भी वर्णन है। यह स्पष्ट है कि ये लोग यहाँ की आदि देशवासिनी

जातियों में से थे और आज कल की नाईं उस समय की हिन्दू समाज में सब से नीचे थे।

इसी ग्रन्थ के ३० वे अध्याय में यह नामावली बहुत बढ़ाकर दी है। हम पहिले दिखला चुके हैं कि यह अध्याय बहुत पीछे के समय का है और वास्तव में उपोद्घात है। पर इसमें भी बहुत से ऐसे नाम मिलते हैं जो केवल व्यवसाय प्रगट करते हैं और बहुत से ऐसे हैं जो निःसंदेह आदिवासियों के हैं और उसमें इसका तो कहीं प्रमाण ही नहीं मिलता कि वैश्य लोग कई जातियों में बटे थे। उसमें नाचनेवाले' वक्ताओं और सभासदों के नाम, रथ बनानेवालों, बढ़इयों, कुम्हारों, जवाहिरियों, खेतिहरों, तीर बनानेवालो और धनुष बनानेवालों के नाम, बौने, कुबड़े अन्धे और बहिरे लोगों के, वैद्य और ज्योतिषियों के, हाथी घोड़े और पशु रखने वालों के, नौकर द्वारपाल, रसोइयों और लकड़िहारों के, चित्रकार और नामादि खोदनेवालों के, धोबी, रंगरेज और नाइयों के, विद्वान मनुष्य, घमण्डी मनुष्य और कई प्रकार की स्त्रियों के, चमार, मछुआहे, व्याधे और बहेलियों के, सोनार और व्यापारी और कई तरह के रोगियों के, नकली बाल बनानेवालों, कवि और कई प्रकार के गवैयों के नाम मिलते हैं। यह स्पष्ट है कि ये सब नाम जातियों के नहीं हैं। इसके सिवाय मागध, सूत, भमिल, मृगयु, स्वनिन, दुर्मद आदि जो नाम आये हैं वे स्पष्टत. आदिवासियों के नाम हैं जो आर्यसमाज की छाया में रहते थे। यहाँ पर हमें केवल इतना ही और कहना है कि करीब करीब यही नामावली तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी दी है।

ऊपर की नामावली से जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं, उस समय के समाज और व्यवसाय का कुछ हाल जाना जाता है; पर इस नामावली से और जाति से कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐतिहासिक काव्य-काल में और इसके पीछे भी मुसलमानों के यहाँ आने के समय तक बराबर आर्यों में से बहुत ही अधिक लोग वैश्य थे, यद्यपि वे कई प्रकार का

व्यवसाय करते थे। वैश्य ब्राह्मण और क्षत्री यही तीन मिलकर आर्य जाति बनाते थे और वे इस जाति के सब स्वत्व के और पैतृक विद्या और धर्म सीखने के अधिकारी थे। केवल पराजित आदिवासी ही जो शूद्र जाति के थे, आर्यों के स्वत्वों से अलग रक्खे गये थे।

पुराने समय की जाति-रीति और आजकल की जाति-रीति में यही मुख्य भेद है। पुराने समय में जाति ने ब्राह्मणों को कुछ विशेष अधिकार और क्षत्रियों को भी कुछ विशेष अधिकार दिया था। पर आर्यों को कदापि बाँट कर अलग-अलग नहीं कर दिया था। ब्राह्मण, क्षत्री, और साधारण लोग यद्यपि अपना जुदा-जुदा पैतृक व्यवसाय करते थे, पर वे सब अपने को एक ही जाति का समझते थे, एक ही धर्म की शिक्षा पाते थे, एक ही पाठशाला में पढ़ने जाते थे; उन सब का एक ही साहित्य और कहावतें थीं, सब साथ ही मिल कर खाते-पीते थे, सब प्रकार से आपस में मेल-मिलाप रखते थे और एक दूसरे से विवाह भी करते थे और अपने को पराजित आदिवासियों से भिन्न "आर्यजाति" का कहने में अपना बड़ा गौरव समझते थे। पर आजकल जाति ने वैश्य आर्यों को सैंकड़ों सम्प्रदायों में जुदा-जुदा कर दिया है; इन सम्प्रदायों ने जाति-भेद बहुत ही बढ़ा दिया है, उनमें परस्पर विवाह और दूसरे सामाजिक हेलमेल को रोक दिया है सब लोगों में धर्म, ज्ञान और साहित्य का अभाव कर दिया है और उन्हें वास्तव में शूद्र बना दिया है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुत से ऐसे वाक्य मिलते हैं जिनसे जान पड़ता है कि पहिले समय में जाति भेद ऐसा कड़ा नहीं था जैसा कि पीछे के समय में हो गया। उदाहरण के लिए ऐतरेय ब्राह्मण (६०-२९) में एक अपूर्व वाक्य मिलता है। जब कोई क्षत्री किसी यज्ञ में किसी ब्राह्मण का भाग खा लेता है तो उसकी सन्तान ब्राह्मणों के गुणवाली होती है जो " दान लेने में तत्पर, सोम की प्यासी और भोजन की भूखी होती है और अपनी इच्छा के अनुसार सब जगह घूमा करती है " और

" दूसरी वा तीसरी पीढ़ी में वह पूरी तरह वासमल्य होने के योग्य हो जाती हैं।" जब वह वैश्य का भाग खा लेता है तो " उस के वैश्य के गुणवाली सन्तान होगी जो दूसरे राजा को कर देगी " और " दूसरी वा तीसरी पीढ़ी में वे लोग वैश्य जाति के होने के योग्य हो जाते हैं।" जब वह शूद्र का भाग ले लेता है तो उसकी सन्तान में " शूद्र के गुण होंगे, उन्हें तीनों उच्च जातियों की सेवा करनी होगी और वे अपने मालिकों की इच्छानुसार निकाल दिये जावेंगे और पीटे जावेंगे " और ' दूसरी वा तीसरी पीढ़ी में वे शूद्रों की गति पाने के योग्य हो जाते हैं।"

किसी पहले के अध्याय में हम दिखला चुके हैं कि वेदों के राजा जनक ने याज्ञवल्क्य को ऐसा ज्ञान दिया कि जो इसके पहिले ब्राह्मण लोग नहीं जानते थे और तब से वह ब्राह्मण समझे जाने लगे। (शतपथ ब्राह्मण ११, ६, २, १) ऐतरेय ब्राह्मण (२, १६) में इलूषा के पुत्र कवष का वृत्तान्त दिया है, जिसमें उसे, और ऋषियों को यह कह कर सत्र से निकाल दिया था कि " एक धूर्त दासी का पुत्र, जोकि ब्राह्मण नहीं है, हम लोगों में कैसे रह कर दीक्षित होगा।" परन्तु कवष देवताओं को जानता था और देवता लोग कवष को जानते थे और इसलिए वह ऋषियों की श्रेणी में हो गया। इसी प्रकार से छान्दोग्य उपनिषद् (४,४) में सत्यकाम जबाला की सुन्दर कथा में यह बात दिखलायी गयी है कि उन दिनों में सच्चे और विद्वान् लोगों ही का सब से अधिक आदर किया जाता था और वे ही सब से ऊँची जाति के समझे जाते थे। यह कथा अपनी सरलता और काव्य में ऐसी मनोहर है कि हम उसको यहाँ लिख देना ही उचित समझते हैं—

(१) जबाला के पुत्र सत्यकाम ने अपनी माता को बुलाकर पूछा कि 'हे माता, मैं ब्रह्मचारी हुआ चाहता हूँ। मैं किस वंश का हूँ।'

(२) उसने उससे कहा "पुत्र" मैं नहीं जानती हूँ कि तू किस वंश का है। मेरी युवावस्था में जब मुझे बहुत करके दासी का काम

करना पड़ता था उस समय मैंने तुझे गर्भ में धारण किया था। मैं यह नहीं जानती कि तू किस वंश का है। मेरा नाम जबाला है, तू सत्यकाम है; इसलिये यह कह कि मैं सत्यकाम जाबालि हूँ।

(३) "वह गौतम हरिद्रुमत के पास गया और उनसे बोला 'महाशय मैं आपके पास ब्रह्मचारी हुआ चाहता हूँ। महाशय क्या मैं आपके पास आ सकता हूँ?"

(४) "उसने उससे कहा 'मित्र तू किस वंश का है?' उसने उत्तर दिया, 'महाशय, मैं यह नहीं जानता कि मैं किस वंश का हूँ। मैंने अपनी माता से पूछा था, उसने उत्तर दिया कि 'मेरी युवावस्था में जब मुझे बहुत करके दासी का काम करना पड़ता था उस समय मैंने तुझे गर्भ में धारण किया था। मैं यह नहीं जानती कि तू किस वंश का है। मेरा नाम जबाला है, तू सत्यकाम है, इसलिये महाशय मैं सत्यकाम जाबालि हूँ।"

(५) इसने कहा ' सच्चे ब्राह्मण के सिवाय और कोई इस प्रकार से नहीं बोलेगा। मित्र, जाओ ईंधन ले आवो मैं तुझे दीक्षा दूगा। तुम सत्य से नहीं टले।'

इसलिये यह सत्य-प्रिय युवा दीक्षित किया गया और उस समय की रीति के अनुसार अपने गुरु के पशु चराने के लिये जाया करता था। कुछ समय में उसने प्रकृति और पशुओं से भी उन बड़ी बड़ी बातों को सीखा जोकि ये लोग सीखनहार हृदय वाले मनुष्यों को सिखलाते हैं। वह जिस झुण्ड को चराता था उसके बैल से, जिस अग्नि को जलाता उससे, और सन्ध्या समय जब वह अपनी गौओं को बाड़े में बन्द करने और सन्ध्या की अग्नि में लकड़ी डालने के पीछे उसके पास बैठता था तो उसके पास जो राजहंस और अन्य पक्षी उड़ते थे उनसे भी बातें सीखता था। तब यह युवा शिष्य अपने गुरु के पास गया और उसने

उससे तुरन्त पूछा "मित्र तुम में ऐसा तेज है जैसे कि तुम ब्रह्म को जानते हो। तुम्हें किसने शिक्षा दी है?" युवा शिष्य ने उत्तर दिया "मनुष्य ने नहीं" जो बात युवा शिष्य ने सीखी थी वह यद्यपि उस समय के मन गढ़ंत शब्दों में छिपी हुई थी पर वह यह थी कि चारों दिशा, पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग और समुद्र, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और जीवों की इन्द्रियाँ तथा मन, सारांश यह कि सारा विश्व ही ब्रह्म अर्थात् ईश्वर है।

उपनिषदों की ऐसी शिक्षा है और यह शिक्षा इसी प्रकार की कल्पित कथाओं में वर्णित है जैसा कि हम आगे चलकर दिखलावेंगे। जब कोई विद्वान् ब्राह्मणों के नियमों, विधानों के अरोचक और निरर्थक पृष्ठों को उलटता है तो उसे उस सत्यकाम जाबाल के कैसी कथाएँ, जोकि मानुषी भावना और करुणा और उच्चतम सुचरित की शिक्षाओं से भरी है, धीरज देती और खुश करती है। पर इस कथा को यहाँ पर लिखने में हमारा तात्पर्य यह दिखलाने का है कि जिस समय ऐसी कथाएँ बनी थीं उस समय तक जातिभेद के नियम इतने कड़े नहीं हो गये थे। इस कथा से हमको यह मालूम होता है कि दासी का लड़का जोकि अपने बाप को भी नहीं जानता था, केवल सचाई के कारण ब्रह्मचारी हो गया, प्रकृति तथा उस समय के पण्डित लोग उसे जो कुछ सिखला सकते थे उन सब बातों को उसने सीखा और अन्त में उस समय के सबसे बड़े धर्मशिक्षकों में हो गया। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय की जाति प्रथाओं में बड़ी ही स्वतन्त्रता थी। पीछे के समय की प्रथा की नाईं उस समय रुकावटें नहीं थीं कि जब ब्राह्मणों को छोड़कर और सब जाति को धर्म का ज्ञान ही नहीं दिया जाता था, वह ज्ञान जो कि जाति का मानसिक भोजन और जाति के जीवन का जीव है।

यज्ञोपवीत का प्रचार ऐतिहासिक काव्य काल ही से हुआ है। सत-पथ ब्राह्मण में (२, ४, २) लिखा है कि जब सब लोग प्रजापति के

यहाँ आये तो देवता और पितृ लोग भी यज्ञोपवीत पहिने हुए आए। और कौशीतकि उपनिषद् (२, १) में लिखा है कि सबको जीतनेवाला कौशीतकि यज्ञोपवीत पहिन कर उदय होते हुए सूर्य की पूजा करता है।

इस प्राचीन काल में यज्ञोपवीत को ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य तीनों ही पहिनते थे, लेकिन केवल यज्ञ करते समय। पर अब उस प्राचीन समय का हम वर्णन कर रहे हैं उस समय के हिन्दू लोग सभ्य और शिष्ट हो गये थे और उन्होंने अपने घर के तथा सामाजिक काम करने के लिये सूक्ष्म नियम तक बना लिये थे। राजाओं की सभा विद्या का स्थान थी और उसमें सब जाति के विद्वान् और बुद्धिमान लोग बुलाए जाते थे, उनका आदर सम्मान किया जाता था और उसे इनाम दिया जाता था। विद्वान् अधिकारी लोग न्याय करते थे, और जीवन के सब काम नियम के अनुसार किये जाते थे। सब जातियों में मजबूत दीवारों और सुन्दर मकानों के नगर बहुतायत से हो गये थे, जिनमें न्यायाधीश, दण्ड देनेवाले और नगररक्षक लोग होते थे। खेती की उन्नति की जाती थी और राज्याधिकारी लोगों का काम कर उगाहने और खेतिहारे के हित की ओर ध्यान देने का था।

विदेहों, काशियों और कुरु पंचालों की नाईं सभ्य और विद्वान् राजाओं की सभाएं उस समय में विद्या की मुख्य जगह थी। ऐसी सभाओं में यज्ञ करने और विद्या की उन्नति करने के लिये विद्वान् पण्डित लोग रक्खे जाते थे और बहुत से ब्राह्मण ग्रन्थ जो कि हम लोगों को आजकल प्राप्त है उन्हीं सम्प्रदायों के बनाये हुए हैं जिनकी नींव इन पण्डितों ने डाली थी। बड़े बड़े अवसरों पर विद्वान् लोग बड़े बड़े दूर के नगरों और गाँवों से आते थे और शास्त्रार्थ केवल क्रिया संस्कार के हीविषय में न होता था, वरन् ऐसे ऐसे विषयों पर भी जैसे कि मनुष्य का मन, मरने के पीछे आत्मा का उद्देश्य स्थान, आनेवाली दुनियाँ,

देवता, पितृ और भिन्न भिन्न तरह के जीवों के विषय में, और उस सर्व व्यापी ईश्वर के विषय में जिसे कि हम सब चीजों मे देखते हैं।

पर विद्या का स्थान सिर्फ सभा ही नही थी। विद्या की उन्नति के लिये परिषद् अर्थात् ब्राह्मणों के विद्यालय थे, जोकि योरुप के विद्यालयों का काम देते थे और इन परिषदों में युवा लोग विद्या सीखने जाते थे। बृहदारण्यक उपनिषद् (६, २) में इसी प्रकार से लिखा है कि श्वेतकेतु वद्या सीखने के लिये पंचालों की परिषद् मे गया। प्रोफेसर मेक्समूलर ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में ऐसे वाक्य उद्धृत किये है जिनसे जान पड़ता है कि इसके ग्रन्थकारों के अनुसार परिषद् में २१ ब्राह्मण होने चाहिए जो दर्शन वेदान्त और स्मृति शास्त्रों को अच्छी तरह जानते हों पर उन्होंने यह दिखलाया हैंकि ये नियम पीछे के समय की स्मृति की पुस्तको मे दिये है और ये ऐतिहासिक काव्य काल में परिषदों का वर्णन नही करते। पराशर कहता है कि किसी गाँव के चार या तीन योग्य ब्राह्मण भी जो वेद जानते हों और होमाग्नि रखते हों, परिषद् बना सकते है।

इन परिषदों के सिवाय अकेले एक एक शिक्षक भी पाठशालाएँ स्थापित करते थे जिनकी तुलना योरोप के प्राइवेट स्कूलोंसे दी जा सकती है और इनमे बहुत से बहुधा देश के भिन्न भिन्न भागों से विद्यार्थी लोग इकट्ठे हो जाते थे। ये विद्यार्थी रहने के समय तक दास की नाईं गुरु की सेवा करते थे और बारह वर्ष बाद इससे भी अधिक समय के पीछे गुरु को उचित दक्षिणा देकर अपने घर अपने लालायित सम्बन्धियों के पास लौट जाते थे। उन विद्वान् ब्राह्मण लोग के पास भी जो वृद्धावस्था में संसार से जुदा होकर वनों में जा बसते थे, बहुधा विद्यार्थी लोग इकट्ठे हो जाते थे और उस समय की अधिकतर कल्पनाएँ इन्हीं बन मे रहनेवाले विरक्त साधु और विद्वान् महात्माओं की है। इस तरह से हिन्दू लोगों में विद्या और ज्ञान की जितनी कदर थी उतनी कदाचित् किसी दूसरी

जाति में प्राचीन अथवा नवीन समय में भी नहीं हुई। हिन्दुओं के धर्म के अनुसार अच्छे काम व धर्म की क्रियाओं के करने से केवल उनको उचित फल और जीवन में सुख ही मिलता है, पर ईश्वर में मिलकर एक हो जाना, यह केवल सच्चे ज्ञान ही से प्राप्त हो सकता है।

जब विद्यार्थी लोग इस तरह से किसी परिषद् में अथवा गुरु से उस की परम्परागत विद्या सीख लेते थे तो वे अपने घर आकर विवाह करते थे और गृहस्थ होकर रहने लगते थे। विवाह के साथ ही साथ उनकी गृहस्थी के धर्म भी आरम्भ होते थे और गृहस्थ का पहला धर्म यह था कि वह किसी शुभ नक्षत्र में होमाग्नि को जला दे, सबेरे और सन्ध्या के समय अग्नि को दूध चढ़ाया करे, दूसरे धर्म के और गृहस्थ के कृत्य किया करे, और सबसे बढ़ चढ़कर यह कि अतिथियों का सत्कार किया करे। हिन्दुओं के कर्त्तव्य का सार नीचे लिखे ऐसे वाक्यों में समझा गया है:—

"सत्य बोलो! अपना कर्त्तव्य करो! वेदों का पढ़ना मत भूलो! अपने गुरु को उचित दक्षिणा देने के पीछे बच्चों के जीव का नाश न करो! सत्य से मत टलो! कर्तव्य से मत टलो! हितकारी बातों की उपेक्षा मत करो! बड़ाई में आलस्य मत करो! वेद के पढ़ने पढ़ाने में आलस्य मत करो!"

"देवताओं और पितरों के कामों को मत भूलो! अपनी माता को देवता की नाईं मानो! अपने पिता को देवता की नाईं मानो! अपने गुरु को देवता की नाईं मानो! जो काम निष्कलंक हैं उन्हीं के करने में चित्त लगाओ, दूसरों में नहीं! जो जो अच्छे काम हम लोगों ने किये हैं उन्हें तुम भी करो!"

(तैत्तिरीय उपनिषद १. २)

छान्दोग्य उपनिषद् ५, १३, १७, १६, १०, २४; शतपथ ब्राह्मण ३, २, ४८; तैत्तिरीय उपनिषद् १, ७ १२ आदि)

छान्दोग्य उपनिषद् के निम्नलिखित वाक्य से उस समय की कुछ धातुओं का पता लगता है:—

"जिस तरह कोई सोने को लवण (सोहागे) से जोड़ता है, चांदी को सोने से, टीन को चाँदी से, जस्ते को टीन से, लोहे को जस्ते से काठ को लोहे अथवा चमड़े से "

(४, १७, ७)

ऐतरेय ब्राह्मण (८, २२) में लिखा है कि अत्रि के पुत्र ने दस हजार हाथियों और दस हजार दासियों को दान दिया था जोकि "गले में आभूषणों से अच्छी तरह से सज्जित थीं और सब दिशाओं से लाई गई थीं," पर यह बात स्पष्टतः बहुत बढ़ा चढ़ा कर लिखी गयी है।

हस्तिनापुर और काम्पिल्य और अयोध्या और मिथिला के निवासियों के, तीन हजार वर्ष पहिले के सामाजिक जीवन का, अपनी आँखों के सामने चित्र खींचना चाहिये। उस समय नगर दीवारों से घिरे रहते थे, उनमें सुन्दर सुन्दर भवन होते थे और गलियाँ होती थीं। वे आजकल के मकानों और सड़कों के समान नहीं होते थे वरन् उस प्राचीन समय में सम्भवतः बहुत ही अच्छे होते थे। राजा का महल सदा नगर के बीच में होता था जहाँ कोलाहल युक्त सर्दार, असभ्य सिपाही, पवित्र साधु सन्त और विद्वान् पुरोहित प्रायः आया जाया करते थे। बड़े बड़े अवसरों पर लोग राजमहल के निकट इकट्ठे होते थे, राजा को चाहते थे, मानते थे, और उसकी पूजा करते थे और राजभक्ति से बढ़कर और किसी बात को नहीं मानते थे। सोना, चांदी और जवाहिर, गाड़ी, घोड़ा खच्चर और दास लोग और नगर के आसपास के खेत ही गृहस्थों और नगर वासियों का धन और सम्पत्ति थे। उन लोगों में सब

घरानों में पवित्र अग्नि रहती थी। वे अतिथियों का सत्कार करते थे, देश के कानून के अनुसार रहते थे, ब्राह्मणों की सहायता से बलि इत्यादि देते थे और विद्या की कदर करते थे। प्रत्येक आर्य बालक छोटे-पन से ही पाठशाला में भेजा जाता था। ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य सब एक ही साथ पढ़ते थे और एक ही पाठ और एक ही धर्म की शिक्षा पाते थे। फिर घर आकर विवाह करते थे और गृहस्थों की नाईं रहने लगते थे। पुरोहित तथा योद्धा लोग भी जन साधारण के एक अंग ही थे, जन साधारण के साथ परस्पर विवाह आदि करते थे और जन साधारण के साथ खाते पीते थे। अनेक प्रकार के कारीगर सभ्य समाज की विविध आवश्यकताओं को पूरा करते थे और अपने पुश्तैनी व्यवसाय को पीढ़ी दर पीढ़ी करते थे, परन्तु वे लोग जुदे जुदे होकर भिन्न भिन्न जातियों में नहीं बंट गए थे। खेतिहर लोग अपने पशु तथा हल इत्यादि लेकर अपने अपने गाँवों में रहते थे और हिन्दुस्तान की पुरानी प्रथा के अनुसार प्रत्येक गाँव का प्रबन्ध और निपटारा उस गाँव की पंचायत द्वारा होता था। इस प्राचीन जीवन का वर्णन बहुत बढ़ाया जा सकता है पर सम्भवतः पाठक लोग इसकी स्वयं ही कल्पना कर लेंगे। हम अब प्राचीन समाज के इस साधारण वर्णन को छोड़कर इस बात की जांच करेंगे कि उस समाज की स्त्रियों की कैसी स्थिति थी।

यह तो हम दिखला ही चुके हैं कि प्राचीन भारतवर्ष में स्त्रियों का बिलकुल परदा नहीं था। चार हजार वर्ष हुए कि हिन्दू सभ्यता के आदि से ही हिन्दू स्त्रियों का समाज में प्रतिष्ठित स्थान था, वे पैतृक सम्पत्ति पाती थीं और सम्पत्ति की मालिक होती थी, वे यज्ञ और धर्मों के काम में सम्मिलित होती थी, वे बड़े बड़े अवसरों पर बड़ी बड़ी सभाओं में जाती थी, वे खुल्लमखुल्ला आम जगहों में जाती थी, वे बहुधा उस समय के शास्त्र और विद्या में विशेष योग्यता पाती थीं और राजनीति तथा शासन में भी उनका उचित अधिकार था, यद्यपि वे मनुष्यों के समान

में इतनी स्वाधीनता से नहीं सम्मिलित होती थी जितना कि आजकल योरप की स्त्रियाँ करती हैं, पर फिर भी उन्हें पूरे पूरे परदे और कैद में रखना हिन्दू लोगों की चाल नहीं थी।

ब्राह्मण ग्रन्थों से बहुत से ऐसे ऐसे वाक्य उद्धृत किये जा सकते हैं जिनसे जान पड़ेगा कि स्त्रियों की उस समय बड़ी प्रतिष्ठा थी, पर हम यहाँ केवल एक या दो ऐसे ऐसे वाक्य उद्धृत करेंगे। इनमें से पहिला वाक्य, जिस दिन याज्ञवल्क्य घर बार छोड़कर बन में गये उस सन्ध्या को याज्ञवल्क्य और उनकी स्त्री की प्रसिद्ध बातचीत है।

(१) जब याज्ञवल्क्य दूसरी वृत्ति धारण करनेवाला था तो उसने कहा ' मैत्रेयी, मैं अपने इस घर से सच सच जा रहा हूँ। इसलिये मैं तुझ में और कात्यायनी में सब बात ठीक कर दूँ। "

(२) मैत्रेयी ने कहा ' मेरे स्वामी, यदि यह धन से भरी हुई सब पृथ्वी ही मेरी होती तो कहिए कि क्या मैं उससे अमर हो जाती।' याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया ' नहीं, तेरा जीवन धनी लोगों के जीवन की नाई होता। पर धन से अमर हो जाने की कोई आशा नहीं है।'

(३) तब मैत्रेयी ने कहा, "मैं उस वस्तु को लेकर क्या करूँ कि जिससे मैं अमर सी नहीं हो सकती! मेरे स्वामी, आप अमर होने के विषय में जो कुछ जानते हो सो मुझसे कहिये। "

(४) याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया " तू मुझे सचमुच प्यारी है, तू प्यारे वाक्य कहती है। आ, यहाँ बैठ, मैं तुझे इस बात को बताऊँगा। जो कुछ मैं कहता हूँ उसे सुनः—

और तब उसने उसे यह ज्ञान दिया जो कि बारम्बार उपनिषदों में बहुत जोर देकर वर्णन किया गया है, कि सर्व व्यापी ईश्वर पति में, स्त्री में, पुत्रों में, धन में, ब्राह्मणों और क्षत्रियों में और सारे संसार में, देवों में, सब जीवों में, सारांश यह है कि सारे विश्व ही में है।

जोकि बुद्धिमती, गुणवती और विद्वान् स्त्री थी, इस बड़े सिद्धान्त को स्वीकार किया और समझा और वह इसकी कदर संसार की सब सम्पत्ति से अधिक करती थी।

बृहदारण्यक उपनिषद्

हमारा दूसरा उद्धृत भाग भी उसी उपनिषद् से है और यह विदेहों के राजा जनक के यहाँ पण्डितों की एक बड़ी सभा से सम्बन्ध रखता है—

"जनक विदेह ने एक यज्ञ किया जिसमें (अश्वमेध के) याज्ञिकों को बहुत सी दक्षिणा दी गयी। उसमें कुरुओं और पांचालों के ब्राह्मण आये थे और जनक यह जानना चाहते थे कि उनमें से कौन अधिक पढ़े हैं। अतएव उन्होंने हजार गौओं को दिखाया और प्रत्येक के सींघों में (सोने के) दस पद बाँधे।

"तब जनक ने उन सभों से कहा 'पूज्य ब्राह्मणों, आप लोगों में जो सब से बुद्धिमान हो वह इन गौओं को हाँके।" इसपर उन ब्राह्मणों का साहस न हुआ, पर याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य से कहा 'मेरे प्यारे, इन्हें हाँक लेजाओ' उसने कहा 'सामन् की जय!' और उन्हें हाँक लेगया।"

इस पर ब्राह्मणों ने बड़ा क्रोध किया और वे घमंडी याज्ञवल्क्य से प्रश्न पर प्रश्न पूछने लगे। पर याज्ञवल्क्य अकेले उन सब का मुकाबला करने योग्य थे। होत्री अस्वल, जारत्कारव आरतभाग, भुज्यु लाह्यायनि, उषस्त चाक्रायन, केहाल कौशनितकय उद्दालक आरुनि, तथा अन्य लोग याज्ञवल्क्य से प्रश्न पर प्रश्न करने लगे, पर याज्ञवल्क्य किसी बात में कम नहीं निकला और सब पंडित एक-एक करके शान्त हो गये।

इस बड़ी सभा में एक व्यक्ति ऐसा था जो उस समय की विद्या और पाण्डित्य में कम नहीं था, क्योंकि वह व्यक्ति एक स्त्री थी (यह एक ऐसी अपूर्व बात है जिससे उस समय के रहन सहन का पता लगता है)

वह इस सभा में खड़ी हुई और बोली कि " हे याज्ञवल्क्य, जिस प्रकार से काशी अथवा विदेहों के किसी योद्धा का पुत्र अपने ढीले धनुष में डोरी लगा कर और अपने हाथ में दो नोकीली शत्रु को बेधनेवाले तीर लेकर युद्ध करने खड़ा होता था, उसी प्रकार से मैं भी दो प्रश्नों को लेकर तुमसे लड़ने के लिए खड़ी हुई हूँ। मेरे इन प्रश्नों का उत्तर दो।" ये प्रश्न किये गये और इनका उत्तर भी दिया गया और गार्गी वाचक्नवी चुप हो गई।

हिन्दू स्त्रियाँ अपने पति की बुद्धिविषयक साथिनी, इस जीवन में उनकी प्यारी सहायक और उनके धर्म विषय कामों की अभिन्न भागिनी समझी जाती थीं और इसी के अनुसार उनकी प्रतिष्ठा और सम्मान भी था। वे सम्पति और बपौती की भी मालिक होती थी, जिससे प्रगट होता है कि उनका कैसा आदर था।

बहुतसी दूसरी प्राचीन जातियों की नाईं हिन्दुओं में भी बहुभार्यता प्रचलित थी। क्योंकि एक मनुष्य के कई स्त्रियाँ होती हैं, पर एक के एक साथ ही कई पति नहीं होते।"

(ऐतरेय ब्राह्मण ३, २३)

ऐतरेय ब्राह्मण (१, ८, ३, ६) में एक अद्भुत वाक्य है जिसमें तीन वा चार पीढ़ी तक आत्मीय सम्बन्धियों मे विवाह करने की मनादी है, " इसलिये भोगनेवाले (पति) और भोगनेवाली (स्त्री) दोनों एक ही मनुष्य से उत्पन्न होते हैं।" " क्योंकि सम्बन्धी यह कहते हुए हँसी खुशी से इकट्ठे रहते हैं कि तीसरी वा चौथी पीढ़ी में हम लोग फिर सम्मिलित होंगे।"

८ वां अध्याय

वेदांग

मुण्डक उपनिषद् में विद्या के दो भेद किये हैं, एक परा और दूसरी अपरा, अक्षय ब्रह्मज्ञान करानेवाली विद्या को परा विद्या कहते हैं, किन्तु अपरा विद्या में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष हैं। छहों वेदांगों की यह सब से प्राचीन गणना है, प्रारम्भ में न तो इनके विषय पर विशेष पुस्तकें थीं, और न विशेष शाखा ही थीं, किंतु केवल विषय मात्र ही था, जिसका अध्ययन वेदों के साथ ही साथ हो जाता था, अतएव वेदांगों का आरम्भ ब्राह्मणों और आरण्यकों में भली-प्रकार मिल सकता है, समय पाकर इन विषयों के ऊपर अधिक से अधिक उत्तम ढङ्ग के ग्रन्थ लिखे गये और प्रत्येक वेदांग की पृथक् शाखा यद्यपि वह वेदों की सीमा में ही थी—बन गई, छहों वेदांगों में से कल्प और ज्योतिष के अतिरिक्त चार वेदांग केवल वेदों को ठीक-ठीक उच्चारण करने और उनको समझने के लिए हैं। कल्प धार्मिक यज्ञों और ज्योतिष ठीक समय को समझाने के लिये है।

शिक्षा के विषय पर लिखे हुए शिक्षासूत्र लगभग कल्पसूत्रों के समान प्राचीन हैं, दोनों में केवल इतना अन्तर है कि जहाँ कल्पसूत्र ब्राह्मण ग्रन्थों के उत्तर भाग हैं वहाँ वेदांग शिक्षा का विषय वेदों की संहिताओं के निकट है।

इस वेदांग का सब से प्राचीन वर्णन तैत्तिरीय आरण्यक (७.१) में अथवा तैत्तिरीय उपनिषद् (१.२) में मिलता है, जहाँ. अक्षरों, जोर देने, शब्द के टुकड़ों की संख्या स्वर और क्रमबद्ध पाठ में शब्दों की मिलावट की शिक्षा के हिसाब से शिक्षा को छः अध्यायों में विभक्त किया

गया है, यज्ञों के समान ही शिक्षा का भी धार्मिक आवश्यकता से ही जन्म हुआ, क्योंकि किसी यज्ञ कार्य को पूर्ण करने के लिये केवल उनको उस यज्ञ को जानना ही आवश्यक नहीं है किन्तु वेद मन्त्रों का ठीक-ठीक उच्चारण और उनका बिना गलती किये हुए पाठ करना भी आवश्यक है, इससे यह परिणाम निकलता है कि शिक्षा के ऊपर ग्रन्थ लिखे जाने के पूर्व ही वेदमन्त्र शिक्षा के क्रम पर आ चुके थे, क्योंकि ऋग्वेद के मंत्र उस रूप में नहीं मिलते जिसमें उनको आरम्भिक काल में बनाया गया था, यद्यपि सम्पादकों ने कोई भी शब्द स्वयं नहीं बदला किन्तु उसके शब्दों में विशेष उच्चारण, विशेष उतार चढ़ाव के स्वर इत्यादि इस प्रकार डाल दिये गये कि वह ठीक-ठीक शिक्षा के ढङ्ग पर बन गये, उदाहरणार्थ संहिता में हम पढ़ते हैं।

"त्वंह्यंगे"

किन्तु यह प्रमाणित किया जा सकता है कि प्राचीन सूत्रकारों ने इसको 'त्वं हि अंगे' कहा था, अतएव वैदिक संहिताएँ स्वयं भी शिक्षा के विद्वानों की रचनाएँ हैं, किन्तु संहिताओं में रखे हुए संहिता पाठ के अतिरिक्त 'पद पाठ' भी किया जाता है, जिसमें प्रत्येक शब्द को पृथक्-पृथक् करके पढ़ा जाता है, दक्षिण में घन पाठ, जटा पाठ आदि अन्य भी अनेक पाठ प्रचलित हैं, संहिता पाठ और पद पाठ की विभिन्नता एक उदाहरण से स्पष्ट हो जावेगी, ऋग्वेद का एक मन्त्र यह है—

'अग्नि, पूर्वेभिऋर्षिभिरीड्यो नूतनैरुत स देवाँ एह वक्षति पद पाठ में इसको इस प्रकार कर दिया जावेगा—

'अग्नि, पूर्वेति.—ऋषि-भिः। नूतनैः। उतं स देवाँ। आ। इह। वक्षति।

ऋग्वेद का पद पाठ करनेवाला शाकल्य समझा जाता है यह वही अध्यापक है, जिसका ऐतरेय आरण्यक में वर्णन आ चुका है।

अतएव संहिता पाठ और पद पाठ शिक्षा सम्प्रदाय के सब से प्राचीन कार्य हैं. इस विषय के ग्रन्थों में सब से प्राचीन ग्रन्थ प्रातिशाख्य है, जिनमें ऐसे नियम हैं कि उनकी सहायता से कोई भी संहितापाठ से पद पाठ बना सकता है, अतएव उनमें उच्चारण, जोर देने, शब्द के बनाने और वाक्य में के शब्द के आवश्यक और अन्तिम अंश पर स्वर का उतार चढ़ाव, स्वरों को लम्बा करने, सारांश कि संहिता को पूर्ण रूप से पाठ करने के ढंग पर प्रकाश डाला गया है। वेदों की प्रत्येक शाखा के पास इस प्रकार के ग्रन्थ होते थे, अतएव इस विषय का नाम प्रतिशाख्य (एक शाख के लिये पाठ्य पुस्तक) पड़ गया। यह प्रातिशाख्य पाणिनि से प्राचीन समझे जाते हैं। संभवतः यह कहना अधिक ठीक होगा कि पाणिनि ने वर्तमान प्रतिशाख्यों का प्रयोग एक अधिक प्राचीन रूप में किया था, उदाहरणार्थ, जब कभी वह वैदिक सन्धि को लेता है वह सदा ही उनके वर्णन में अधूरा रहता है, जब कि प्रातिशाख्य कौरविशेष कर अथर्ववेद का प्रातिशाख्य वैयाकरणों की पारिभाषिकताओं के आधीन हैं।

सब से प्राचीन ऋग्वेद प्रतिशाख्य है जो शौनक का कहा जाता है। (यही शौनक आश्वलायन का अध्यापक समझा जाता है, इस विस्तृत ग्रन्थ में तीन काण्ड हैं। यह प्रातिशाख्य पद्य में है। संभवतः यह किसी प्राचीन सूत्र ग्रन्थ का रूपान्तर है क्योंकि अनेक ग्रन्थों में इसको सूत्र भी कहा गया है।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य सूत्र अपने अनेक अध्यापकों के नामों के कारण रोचक बन गया है, इसमें लगभग बीस अध्यापकों का वर्णन किया गय है।

वाजसनेय प्रातिशाख्य सूत्र अपने को कात्यायन रचित बतलाता है, पूर्व आचार्यों में यह शौनक का नाम भी लेता है, इसमें आठ अध्याय हैं, प्रतिज्ञासूत्र इस प्रातिशाख्य का उपसंहार है।

शौनक के सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखनेवाला अथर्ववेद प्रातिशाख्य इस प्रकार के अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक व्याकरणपूर्ण है।

एक साम प्रातिशाख्य भी है, पुष्पसूत्र सामवेद के उत्तरगण का एक प्रकार का प्रातिशाख्य है, सामवेद के मन्त्रों के गायन के ऊपर एक और ग्रन्थ पञ्चविधसूत्र भी है।

इन प्रातिशाख्यों का महत्व दो प्रकार से है, प्रथम तो यह कि इनमें भारत में व्याकरण के अध्ययन का इतिहास छिपा हुआ है, जोकि जहाँ तक हम समझते हैं प्रातिशाख्यों के साथ ही आरम्भ होता है। दूसरे इनका महत्व इस बात में है कि यह अपने साथ में भी संहिताओं के उसी रूप में होने की गवाही देते हैं, जिसमें कि वह हमको आज मिलते हैं; ऋग्वेद प्रातिशाख्य पर विचार करने से पता चलता है कि ऋक्-प्रातिशाख्य के समय ऋग्वेद न केवल दस मण्डलों में ही विभक्त था, किन्तु उसके मंत्रों का भी वही क्रम था जो हमको आज मिलता है।

यह प्रातिशाख्य वेदांग शिक्षा के सब से प्राचीन रूप हैं, उनके अतिरिक्त बहुत से नवीन ग्रन्थ भी हैं, जिनका नाम शिक्षा है और जो अपने को भारद्वाज, व्यास, वशिष्ठ और याज्ञवल्क्य आदि बड़े-बड़े ऋषियों की रचना बतलाते हैं। यह ठीक उसी प्रकार प्रातिशाख्यों का अनुसरण करते हैं जिस प्रकार बाद में स्मृतियों ने धर्मसूत्रों का अनुगमन किया, इनमें से कुछ शिक्षा प्राचीन भी हैं और उनका किसी न किसी प्रातिशाख्य से भी सम्बन्ध है, उदाहरणार्थ, व्यास शिक्षा का सम्बन्ध तैत्तिरीय प्रातिशाख्य से है, किन्तु अन्य ग्रन्थों का किसी प्रकार से भी महत्व नहीं है।

प्रकाशित शिक्षा ग्रन्थ

(१) ऋग्वेद-प्रातिशाख्य जर्मन अनुवाद सहित, सम्पादक मैक्समूलर Leipzig १८५६-६९,

(२) तैत्तिरीय प्रातिशाख्यसूत्र इंगलिश अनुवाद सहित Journal of the American Oriental Society Vol. 9 New Haven 1871.

(३) क, वाजसनेय प्रातिशाख्य सूत्र सम्पादक पी० वी० पाठक बनारस १८८३-८८

ख, वेबर कृत जर्मन अनुवाद सहित, Ind. Stud. 4 65-160 177-331, ABA, pp. 69 ff.

(४) प्रतिज्ञा सूत्र—वेबर संस्करण

(५) अथर्ववेद प्रातिशाख्य—सम्पादक विश्वबन्धु विद्यार्थी शास्त्री प्रथमभाग पंजाब यूनीवर्सिटी

(६) साम प्रातिशाख्य सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा 'उषा' कलकत्ता में १८९० में सम्पादित

(७) पुष्पसूत्र जर्मन अनुवाद सहित, सम्पादक R. Simon, A Bay A. 1909, pp. 481-780

(८) पञ्चविध सूत्र जर्मन अनुवाद सहित by R. Simon, Braslan 1913 (Indische Foreschungen nr. 5

(९) शिक्षा संग्रह—बनारस संस्कृत सेरीज,

कल्प

शिक्षा के पश्चात् दूसरा वेदांग कल्प है, जिसका विस्तृत वर्णन अगले अध्याय में विस्तार से करेंगे।

व्याकरण

पद पाठों से प्रतीत होता है कि उनके रचयिताओं ने केवल उच्चारण और सन्धियों के सम्बन्ध में ही छानबीन नहीं की किन्तु वे व्याकरण के अनुसार शब्दों की व्युत्पत्ति करनी भी बहुत अच्छी जानते थे, क्योंकि वह समास के दोनों भागों, क्रिया और उपसर्गों तथा शब्द और प्रत्ययों

को पृथक् पृथक् कर देते थे; वह चारों पदजातों को पहिले से ही जानते थे, यद्यपि इनका नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात सबसे पहिले यास्क ने वर्णन किया है, संभवतः शब्दों को इस प्रकार पृथक् करने से इस शास्त्र का नाम व्याकरण पड़ा, भाषा सम्बन्धी छानबीन की साक्षी ब्राह्मणों में भी पाई जाती है, क्योंकि उनमें भी विभिन्न व्याकरण सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द मिलते हैं, उदाहरणार्थ, वर्ण (अक्षर), वृषन (पुल्लिंग), वचन और विभक्ति, आरण्यकों, उपनिषदों और सूत्रों में यह उल्लेख और भी अधिक पाये जाते हैं, किन्तु यास्क के निरुक्त से पाणिनि से पूर्व के व्याकरण का खूब पता चलता है।

यास्क के पूर्व व्याकरण का अध्ययन खूब हो चुका होगा, क्योंकि अपने से पूर्व बीस आचार्यों के नाम गिनाने के अतिरिक्त एक उत्तरीय और एक पूर्वीय सम्प्रदाय का उल्लेख करता है, उसके बतलाये हुए नामों में से शाकटायन, गार्ग्य और शाकल्य के नाम बहुत महत्वशाली हैं, यास्क के समय वैयाकरणों को शब्द और उसकी रचना का वर्णन ज्ञात हो गया था, वह पुरुष वाचक रूप और काल वाचक रूप चलाने के साथ ही साथ कृत् और तद्धित् प्रत्ययों को भी जान गये थे, यास्क शब्दों के धातुओं से बनने के सिद्धान्त पर रोचक विवाद किया है जिसका वह स्वयं भी अनुगामी है, वह कहता है कि गार्ग्य और कुछ दूसरे वैयाकरणी इस सिद्धान्त को सामान्य रूप से तो मानते हैं किन्तु वह सभी संज्ञा शब्दों को धातुओं से निकलनेवाला नहीं मानते, वह उनकी युक्तियों का खण्डन करता है, पाणिनि का सारा व्याकरण भी शाकटायन की धातुओं से सभी संज्ञा शब्दों के निकलने के सिद्धान्त पर खड़ा हुआ है, पाणिनि के व्याकरण में वैदिक रूपों के भी सैंकड़ों नियम हैं, किन्तु यह प्रधान विषय में अपवाद रूप हैं, क्योंकि पाणिनि का प्रधान विषय संस्कृत भाषा है, वर्तमान साहित्य पाणिनि की भाषा के आधार पर ही बना है, यद्यपि पाणिनि सूत्रकाल के मध्य में हुआ है तथापि उसके समय से वेदों से आगे का

समय माना जा सकता है। सबसे बड़ा प्रमाण होने के कारण पाणिनि ने अपने से पूर्व सभी आचार्यों का खण्डन किया. जिनके ग्रन्थ नष्ट हो चुके हैं उनमें से केवल यास्क ही बचा है, वह भी संभवत इस कारण से कि वह सीधे तौर से वैयाकरणी नहीं है क्योंकि उसका ग्रन्थ वेदांग निरुक्त है, शाकटायन के नाम का एक व्याकरण अब भी मिलता है किन्तु अभी तक किसी विद्वान् ने उसकी तुलनात्मक आलोचना से यह प्रगट नहीं किया कि इस शाकटायन के व्याकरण में सब मत विद्यमान हैं. जिनका यास्क और पाणिनी ने खण्डन या मण्डन किया है।

निरुक्त

यास्क का निरुक्त वास्तव में एक वैदिकी टीका है, यह इस विषय के किसी भी ग्रन्थ से कई शताब्दी प्राचीन है, यह निघण्टु के आधार पर बना है, जो कि वैदिक कोष है, दन्तकथाओं में निघण्टु को भी यास्क की ही रचना माना है, किन्तु वास्तव में यास्क ने इन शब्दों के ऊपर टीका ही लिखी है, निघण्टु के शब्दकोष के विषय में यास्क कहता है कि वह प्राचीन ऋषियों का बनाया हुआ है, जिससे वेदार्थ को सुगमता से समझा जा सके, निघण्टु में शब्दों की पाँच प्रकार की सूचियाँ हैं, जो तीन काण्डों में विभक्त हैं, पहिले नैघण्टुक काण्ड में तीन सूचियाँ हैं, जिन में वैदिक शब्द विशेष अभिप्रायसे एकत्रित किये गये हैं, उदाहरणार्थ पृथ्वी के २१, स्वर्ग के १५, के वायु के १६, जल के १०१, जालक्रिया के १२२ नाम दिये गये हैं, दूसरा नैगम काण्ड या ऐकपदिक है, इसमें वेद के अत्यन्त कठिन शब्दों के अर्थ हैं, तीसरे दैवतकाण्ड में पृथ्वी, आकाश और स्वर्ग के क्रम से देवताओं का विभाग किया गया है, सम्भवतः इस प्रकार के ग्रन्थ से वेदों के अर्थ की ओर प्रवृत्ति डाली गई, निरुक्त जैसे ग्रन्थों का लिखा जाना वैदिक अर्थ के लिये दूसरा प्रयत्न था, यास्क के —ने और भी बहुतसे निरुक्त थे, जिनमें से अब कोई भी नहीं बचा है,

यास्क का ग्रन्थ उनमें सब से अच्छा और सब से अन्तिम है।

निरुक्त का प्रथम अध्याय केवल व्याकरण सम्बन्धी सिद्धान्तों और वेदार्थ की भूमिका है, दूसरे और तीसरे अध्याय में निघण्टु के नैघण्टुक काण्ड पर टीका है, चौथे से छठे अध्याय तक निघण्टु के नैगम काण्ड पर टीका है, तथा सातवें से बारहवें तक निघण्टु के दैवत काण्ड पर टीका है। निरुक्त बड़ा रोचक ग्रन्थ है, इसकी भाषा पाणिनी से भी सरल है। यास्क का समय ईसा से पूर्व पाँचवी शताब्दी होने से वह सूत्र काल के आरम्भ का आचार्य है।

छन्द

ब्राह्मणों मे छन्द के अनेक विशृँखलित उल्लेख होने पर भी शाङ्खायन श्रौत सूत्र ७।२७ ऋग्वेद प्रातिशाख्य अन्त के तीन पटलों और सामवेद के निदान सूत्र में न केवल छन्द का प्रथक् वर्णन किया गया है किन्तु उक्थ, स्तोम और गण का भी वर्णन है, पिङ्गल छन्द सूत्र एक भाग में भी वैदिक छन्दों का वर्णन किया गया है, किंतु पिङ्गल छन्द सूत्र के वेदाङ्ग कहे जाने पर भी यह वेदाङ्ग नहीं कहा जाना चाहिये। क्योंकि इस मे वेदोत्तर काल का संस्कृत के छन्दों से ही विशेष नियम दिये हुए हैं।

इसके अतिरिक्त आगे लिखी हुयी कात्यायन की दो अनुक्रमणिकाओं में भी एक एक खण्ड वैदिक छन्दों के लिये दिया गया है। यह खण्ड विषय में ऋग्वेद प्रातिशाख्य के सोलहवें पटल से बिलकुल मिलते जुलते हैं, और सम्भव है कि यह प्रातिशाख्य के उस अंश से प्राचीन हों, यद्यपि प्रातिशाख्य अनुक्रमणी से प्राचीन समझा जाता है।

ज्योतिष

वेदाङ्ग ज्योतिष पद्य का एक छोटा सा ग्रन्थ है, इसके ऋग्वेद के संस्करण में ३६ और यजुर्वेद के ४३ श्लोक हैं, यह किसी लगध नाम के

विद्वान् का बनाया हुआ कहा जाता है, इसका मुख्य विषय सूर्य और चन्द्रमा का स्थान जानना और सताइस नक्षत्रों के चक्र में अमावस्या और पूर्णिमा के चन्द्रमा का स्थान जानना है, संभव है कि ज्योतिष पर सब से प्राचीन ग्रन्थ यही हो किन्तु इसके प्राचीन होने की साक्षी अन्य ग्रन्थों से नहीं मिलती।

अनुक्रमणियाँ

वेद, ब्राह्मण और वेदांगों का वर्णन हो चुकने पर भी एक ऐसे प्रकार का वैदिक साहित्य बच रहता है, जिसको अनुक्रमणी कहते हैं। इसमें वेदमंत्रों, वैदिक रचयिताओं, छन्दों और देवताओं की सूची इसी क्रम से दी गयी है, जिस क्रम से वह संहिताओं में मिलते हैं।

ऋग्वेद से इस प्रकार के सात ग्रन्थों का सम्बन्ध है, जो सब के सब शौनक के कहे जाते हैं। यह शौनक के ऋग्वेद प्रातिशाख्य के समान श्लोक और त्रिष्ठुभ् छन्दों के मिश्रण से बने हुए हैं, एक सर्वानुक्रमणी भी है, जो कात्यायन की कहलाती है, आर्पानुक्रमणी २०० श्लोकों का ग्रन्थ है, इसमें ऋग्वेद के ऋषियों की सूची है, इसका वर्तमान संस्करण इतना नवीन है कि वह बारहवीं शताब्दी में षड्गुरु शिष्य के टीकाकार को भी विदित था, छन्दोनुक्रमणी में ऋग्वेद के छन्दों को गिनाया गया है, यह प्रत्येक मण्डल के छन्दों के मंत्रों की संख्या और सब छन्दों के मंत्रों की संख्या भी बतलाती है। अनुवाकानुक्रमणी केवल ४० श्लोकों का छोटा सा ग्रन्थ है, यह ऋग्वेद के ८५ अनुवाकों के सांकेतिक शब्द देकर प्रत्येक अनुवाक् के मंत्रों की संख्या बतलाता है।

पादानुक्रमणी नाम की एक और भी मिश्रित छन्दों की छोटी अनुक्रमणी है। सूक्तानुक्रमणी, जो कि अब अनुपलब्ध है, प्रतीकों की अनुक्रमणी थी। संभवतः सर्वानुक्रमणी के सामने व्यर्थ हो जाने के कारण ही यह नष्ट हो गयी, देवतानुक्रमणी की यद्यपि कोई प्रति नहीं है किन्तु

षड्गुरुशिष्य ने उसके दस उद्धरण किये हैं। बृहद्देवता सभी अनुक्रमणियों से बड़ा है, उसमें १२०० श्लोक ही हैं, केवल कहीं त्रिष्टुपों से काम लिया गया है। यह ऋग्वेद के अष्टकों के समान आठ अध्यायों में विभक्त है, इसका उद्देश्य ऋग्वेद के क्रम को निश्चित रखते हुए प्रत्येक मंत्र का देवता बतलाना है। किन्तु अनेक कथाओं के कारण इसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है, यह यास्क के निरुक्त के आधार पर बना है, इसके अतिरिक्त इसके रचयिता ने यास्क, भागुरी और आश्वलायन आदि अनेक ऋषियों का उल्लेख करते हुए निदान सूत्र का भी उल्लेख किया है, इसमें कुछ ऐसी खिलाओं का भी उल्लेख किया है जो ऋग्वेद में नहीं है।

इन से कुछ बाद की कात्यायन की सर्वानुक्रमणी है, यह सूत्र ढंग का बड़ा भारी ग्रन्थ है, छापे में भी इसमें लगभग ४६ पृष्ठ हो गये है। बारह खण्डों की इसमें भूमिका है, जिनमें से नौ खण्डो में केवल वैदिक छन्दों का वर्णन है, जो वैदिक प्रतिशाख्य के वर्णन से मिलता-जुलता है, शौनक का दूसरा छन्दबद्ध ग्रन्थ ऋग्विधान है, जिसमें ऋग्वेद के मंत्रों के पाठ से या केवल एक मंत्र के पाठ से होनेवाले आश्चर्यजनक प्रभाव का वर्णन किया गया है।

सामवेद के परिशिष्ट की दो अनुक्रमणी हैं एक आर्ष, दूसरी दैवत। जिनमें क्रम से सामवेद की कौथुम शाखा के ऋषियों और देवताओं को गिनाया गया है, उनमें यास्क, शौनक, अश्वलायन और दूसरे ऋषियो का उल्लेख किया गया है।

कृष्ण यजुर्वेद की दो अनुक्रमणी हैं, आत्रेय शाखावाली में दो भाग हैं, जिनमें से प्रथम गद्य में तथा द्वितीय श्लोकों में है। काठकों की चारायणीय शाखा की अनुक्रमणी में भिन्न-भिन्न मन्त्रों के रचयिताओं की गणना की गयी है, कहा जाता है कि अत्रि ने इसको बनाकर लौगाक्षी को दे दी।

कात्यायन की कही जाने वाली माध्यन्दिनी शाखा (शुक्लयजुर्वेद) की अनुक्रमणी में पाँच खण्ड हैं, प्रथम चार में रचयिताओं, देवताओं और छन्दों की गणना है, पाँचवें खण्ड में छन्दों का संक्षिप्त वर्णन है, शुक्ल यजुर्वेद के और भी बहुत से परिशिष्ट हैं, जो सब कात्यायन के कहलाते हैं; इनमें से यहाँ केवल तीन का उल्लेख किया जा सकता है, निगम परिशिष्ट में शुक्ल यजुर्वेद के शब्दों का वर्णन है, प्रवराध्याय में ब्राह्मणों के कुछ वंशों का वर्णन है, जिससे विवाहादि में उनका विचार किया जा सके, चरणव्यूह में विभिन्न वैदिक सम्प्रदायों का वर्णन है, यह ग्रन्थ बहुत बाद का बनाहुआ है।

अथर्व वेद के परिशिष्टों में भी एक चरणव्यूह मिलता है; अथर्ववेद के ७० परिशिष्ट हैं।

९ वां अध्याय

कल्पसूत्र

इनमे से सबसे प्राचीन सूत्र ग्रन्थ वही हैं जो अपने विषय में ब्राह्मण और आरण्यकों से सीधा सम्बन्ध रखते हैं। ऐतरेय आरण्यक मे ऐसे बहुत से अंश हैं, जो सूत्र के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हैं और जिनका रचयिता आश्वलायन और शौनक को माना जाता है। ब्राह्मणों के विषय का सीधा सम्बन्ध कल्प से है, अत. ऋषियों का ध्यान सबसे प्रथम इसी विषय को पूर्ण करने की ओर गया। उन्होंने इस विषय के अनेक ग्रन्थ बनाकर इसका नाम कल्पसूत्र रखा।

कल्पसूत्र के तीन विभाग हैं—

श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र। श्रौतयज्ञों का वर्णन करनेवाले ग्रन्थ श्रौतसूत्र कहलाते हैं, गृहस्थ सम्बन्धी संस्कारों और रीतियों का वर्णन करनेवाले ग्रन्थ गृह्यसूत्र कहलाते हैं, और धर्म के नियमों का वर्णन करनेवाले ग्रन्थ धर्मसूत्र कहे जाते हैं। इसी विषय से सम्बन्धित एक और प्रकार का साहित्य है उसको शुल्बसूत्र कहते हैं, उनमें यज्ञशाला आदि बनाने के नियम हैं।

श्रौतसूत्र—सबसे प्राचीन श्रौतसूत्रों का रचना काल मसीह से पूर्व ४०० से ८०० वर्ष है।

ऋग्वेद सम्बन्धी अभी तक दो ही श्रौतसूत्रों का पता लगा है—एक आश्वलायन का दूसरा शाङ्खायन का। आश्वलायन श्रौतसूत्र में १२ अध्याय हैं और शाङ्खायन मे १८ अध्याय हैं, पहिले का सम्बन्ध ऐतरेय ब्राह्मण से और दूसरे का शाङ्खायन ब्राह्मण मे है। वेबर साहिब की सम्मति में

आश्वलायन ब्राह्मणकाल का न होकर पाणिनि का समकालीन होना चाहिये, क्योंकि 'अयन' प्रत्यय लगाकर नाम बनाने की परिपाटी ब्राह्मण काल की नहीं है, आश्वलायन ने आश्मरथ्य और तैलवलो ऋषियों का उल्लेख किया है, जिनका नाम पाणिनि के अष्टाध्यायी में भी पाया जाता है। अन्त में उन्होंने बहुत ब्राह्मण परिवारों की नामावली दी है, जिनमें से मुख्य भृगु, अङ्गिरा, अत्रि, विश्वामित्र, कश्यप, वशिष्ट, और अगस्त्य है। सरस्वती पर के यज्ञ का वर्णन बहुत संक्षेप में किया गया है, यही आश्वलायन ऐतरेय आरण्यक के चौथे काण्ड का रचयिता है तथा शौनक का शिष्य है।

शाङ्खायन सूत्र इससे कुछ प्राचीन प्रतीत होते हैं, पन्द्रहवें और सोलहवें अध्यायों में तो यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। क्योंकि वह स्थल स्पष्ट ब्राह्मण ढंग के बने हुए हैं और सतरहवें और अठारहवें अध्याय पीछेके प्रतीत होते हैं।

आश्वलायन सूत्र और ऐतरेय ब्राह्मण दोनों ही पूर्व भारत की रचना प्रतीत होते हैं, इसके विरुद्ध शाङ्खायनसूत्र और उसका ब्राह्मण उत्तरी गुजरात के प्रतीत होते हैं, दोनों में भी यज्ञों का क्रम प्रायः वही है, यद्यपि लगभग सभी यज्ञ राजाओं के लिये हैं, उन यज्ञों के नाम यह हैः—

वाजपेय (ऐश्वर्य पाने का यज्ञ), राजसूय (महाराज पद पाने का यज्ञ) अश्वमेध (सम्राट् पद पाने का यज्ञ), पुरुषमेध, और सर्वमेध, शाङ्खायन ने इन यज्ञों का विस्तृत वर्णन किया है।

सामवेद के अभी तक चार श्रौतसूत्र मिले हैं—जिनमें से एक मशक का, दूसरा लाट्यायन का, तीसरा द्राह्यायन का और चौथा जैमिनीय का।

मशकसूत्र में ग्यारह प्रपाठक हैं, जिनमें से प्रथम पाँच में एकाह यज्ञ (एक दिन में समाप्त होनेवाला यज्ञ), दूसरे चार में अहीन यज्ञ (कई

दिन तक होनेवाले यज्ञ) और अन्त के दो में सत्रों (बारह दिन तक होनेवाले यज्ञों) का वर्णन है।

लाट्यायन सूत्र कौथुमस शाखा का है, मशक सूत्र के समान यह सूत्र भी पूर्णरूप से पञ्चविंश ब्राह्मण से सम्बन्ध रखता है, इसने ब्राह्मण के बहुत से उद्धरण देकर उसके आचार्य शाण्डिल्य, धनञ्जय और शाण्डिल्यायन का भी उल्लेख किया है, इनके अतिरिक्त लाट्यायन ने बहुत से आचार्यों के नाम लिये हैं। उदाहरणार्थ उसके अपने आचार्य, आर्षेय कल्प, गौतम, मौचीवृत्ती, चैल्यक्षरभी, कौत्स, वार्षगण्य, भाण्डितायन, लामकायन, राणायनीपुत्र, शाण्डायनी, शालकायनी आदि। इस सूत्र से प्रतीत होता है कि इसके समय में शूद्र और निषादों की परिस्थिति इतनी खराब नहीं थी जैसी बाद को हो गई। उस समय उनको यज्ञ भवन में यज्ञभूमि के पास तक आने की अनुमति थी, लाट्यायन सूत्र में दस प्रपाठक हैं, जिनमें से प्रथम सात प्रपाठकों में सभी प्रकार के सोमभागों के साधारण नियम दिये गये हैं। आठवें प्रपाठक और नौवें प्रपाठक के कुछ भाग में एकाह यज्ञ का वर्णन है, नौवें प्रपाठक के अवशिष्ट भाग में अहीन यागों का और दसवें में सत्रों का वर्णन है।

द्राह्यायण सूत्र राणायनीय शाखा है, राणायन वंश वशिष्ठ से उत्पन्न हुआ है, अतएव इस सूत्र को वशिष्ठ सूत्र भी कहते हैं, इसके विषय आदि का अभीतक विशेष पता नहीं चल सका।

शुक्ल यजुर्वेद का संबंध कात्यायन श्रौत सूत्र से है, इसके छब्बीस अध्यायों में पूर्ण रूप से शतपथ ब्राह्मण के यज्ञक्रम का अनुसरण किया गया है, इसमें बाईसवें से तेईसवें अध्याय तक में सामवेद के यज्ञों का वर्णन है, अपने परिष्कृत ढंग के कारण यह ग्रन्थ सूत्रकाल के अन्त का प्रतीत होता है।

कात्यायन श्रौत सूत्र के प्रथम अठारह अध्याय विषय में शतपथ ब्राह्मण के प्रथम नौ काण्डों से मिलते जुलते हैं, नौवें अध्याय में

सौत्रामणि यज्ञ का और बीसवें में अश्वमेध यज्ञ का और इक्कीसवें में पुरुषमेध, सर्व मेध और पितृमेध यज्ञों का वर्णन है, पच्चीसवें में प्रायश्चित का और छब्बीसवें में प्रवर्ग्य यज्ञ का वर्णन है, वेबर साहिब ने वैजवाद श्रौतसूत्र को भी शुक्ल यजुर्वेद का ही माना है।

कृष्ण यजुर्वेद से संबंध रखनेवाले कम से कम छै श्रौत सूत्र सुरक्षित हैं, किन्तु उनमें से अभीतक केवल दो ही पा सके हैं, आपस्तंब और हिरण्यकेशी ने पूरे कल्पसूत्र लिखे हैं, जिनमें आपस्तंब के तीस अध्यायों में से चौबीस में और हिरण्यकेशी के उनतीस अध्यायों में से अठारह अध्यायों में इनके श्रौतसूत्र हैं, बौधायन और भारद्वाज के सूत्र अभीतक अप्रकाशित ही हैं, सुना है भारद्वाज गृह्यसूत्र हालैंड में किसी महिला ने संपादन करके प्रकाशित कराया है। वाधूल और वैखानस के श्रौतसूत्र भी तैत्तिरीय संहिता से ही संबंध रखते हैं, बौधायन के सब से प्राचीन होने में कुछ भी सन्देह नहीं किया जा सकता, उसके बाद क्रम से भारद्वाज, आपस्तंब, और हिरण्यकेशी हुए हैं।

मैत्रायणी संहिता से मानव श्रौतसूत्र का संबंध है, संभवतः इसी मानव शाखा के धर्मसूत्र से मनुस्मृति बनी है।

अथर्ववेद का श्रौतसूत्र वैतानसूत्र है। वैतान नाम संभवतः अपने प्रथम शब्द वैतान के कारण ही पड़ गया है, यह गोपथ ब्राह्मण से संबंध रखता है यद्यपि यह कात्यायन के श्रौतसूत्र का अनुकरण करता है।

यद्यपि श्रौतसूत्रों से ही यज्ञ का वास्तविक स्वरूप समझा जा सकता है किंतु सब ग्रन्थों में सब से अधिक रूक्ष विषय इन्हीं का है, इन यज्ञों में यजमान और पुरोहित दो मुख्य समुदाय थे। यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण पुरोहित होते थे, जिनकी संख्या एक से सोलह तक होती थी, क्रिया में यजमान बहुत कम भाग लेता था। वेदी के तीनों ओर की तीनों अग्नियों का विशेष कार्य रहता था, सब से प्रथम अग्न्याधान किया जाता था और फिर अग्नि को समिधाओं से जलाये रखा जाता था।

श्रौतकाव्यों की संख्या चौदह है, जो सात-सात कवियों में दो स्थानों पर बँटे रहते थे, प्रत्येक विभाग के साथ एक-एक प्रकार के पशु की बली का संबंध है।

प्रकाशित श्रौतसूत्र

(१) क० आश्वलायन श्रौतसूत्र विविलोथिका इंडिका कलकत्ता।
ख० ,, Harvard Oriental Series Vol. 25

(२) क० शाङ्खायन श्रौतसूत्र संपादक A. Hillebrandt Bibilothica Indica 1888.
ख० शाङ्खायन श्रौतसूत्र संपादक Keith Jounal of the Royal Asiatic Society 1907 pp 410 ff
ग० ,, Harvand Oriental Series Vol. 25. pp. 50 f.

(३) मशक कल्पसूत्र, संपादक W. Caland Abhandlungen fur die Kunde des morgenlandes, herausg, vonder Deutscher morgenlandischen Gesollschaft XII, 3 Leipzig 1908.

(४) लाट्यायन श्रौतसूत्र संपादक Bibilothica Indica कलकत्ता।

(५) द्राह्यायण श्रौतसूत्र संपादक J. N. Reuter part I. London 1904

(६) जैमिनीय श्रौतसूत्र (अग्निष्टोम अध्याय) Leyden 1906

(७) कात्यायन श्रौतसूत्र संपादक A. Weber.

(८) बौधायन श्रौतसूत्र संपादक W. Caland Bibilothica Indica 1904–1926

(९) आपस्तंब श्रौतसूत्र संपादक R. Garbe Bibi Ind. 1882—1903

(१०) हिरण्यकेशी श्रौतसूत्र सटीक, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली पूना।

(११) क. मानव श्रौतसूत्र Books I—V. edited by Mr. Knauver Set. Petersburg 1900

ख० मानव श्रौतसूत्र का चयन by J. M. Van Gelder Leyden 1921

(१२) वैतान श्रौतसूत्र जर्मन अनुवाद सहित, अनुवादक R. Garbe. London &Strassburg 1878.

गृह्य सूत्र

ब्राह्मण ग्रन्थों में गार्हस्थ संस्कारों का लगभग अभाव होने के कारण गृह्यसूत्रों की रचना की आवश्यकता पड़ी, अतएव स्वाभाविक रूप से ही गृह्यसूत्रों का काल श्रौतसूत्रों के पीछे का है।

ऋग्वेद का सम्बन्ध शाङ्खायन और आश्वलायन गृह्यसूत्रों से है, पहले में और दूसरे में चार अध्याय हैं। शौनक के गृह्य सूत्र का भी कई स्थानों पर उल्लेख है किन्तु सम्भवतः अब उसका अस्तित्व ही नहीं है। शाङ्खायन गृह्यसूत्र ही मिलता जुलता शाम्बव्य गृह्य सूत्र है, जो कौषीतकि शाखा से सम्बन्ध रखता है। किन्तु यह अभी तक पूर्ण रूप से मिल नहीं सका है। कौषीतकि गृह्यसूत्र अवश्य ही पृथक् छपा है।

सामवेद का प्रधान गृह्यसूत्र गोभिल सूत्र है, जो गृह्यसूत्रों में सबसे प्राचीन, सबसे अधिक पूर्ण, और सबसे अधिक रोचक है। इसका प्रयोग सामवेद की दोनों शाखा करती रही हैं, द्राह्यायण शाखा के खदिर गृह्यसूत्र से सामवेद की राणायनीय शाखा भी काम लेती रही है, किन्तु यह

गोभिल गृह्यसूत्र का ही परिष्कृत रूप है। जैमिनीय गृह्यसूत्र भी सामवेद का ही है।

शुक्ल यजुर्वेद के गृह्य पारस्कर सूत्र हैं और कात्यायन गृह्य सूत्र हैं, पारस्कर कातीय था वाजसनेय गृह्य सूत्र भी कहते हैं। कात्यायन गृह्यसूत्रसे इसका इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि इसका उद्धरण बार बार उस रचयिता के नाम से हो जाता है, याज्ञवल्क्य के धर्मशास्त्र पर भी इसका भारी प्रभाव पड़ा है, इसमें तीन काण्ड हैं।

कृष्ण यजुर्वेद के सात गृह्यसूत्रों में से अभी तक केवल तीन ही छुपे हैं। आपस्तम्ब गृह्य सूत्र आपस्तम्ब कल्पसूत्र का छब्बीस और सत्ताईसवाँ अध्याय है। हैरण्यकेशी गृह्यसूत्र हैरण्यकेशी कल्पसूत्र का १९ और बीसवाँ अध्याय है। बौधायन और भारद्वाज के गृह्य सूत्रों के विषय में कुछ भी विदित नहीं है। मानव गृह्य सूत्र का मानव श्रौतसूत्रों से इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि गृह्य में अनेक अनेक बार श्रौत के ही अवतरणों को दोहराया गया है। यह बात बड़ी विचित्र है कि इस सूत्र का विनायक पूजन अन्य किसी सूत्रकार को विदित नहीं है। याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्र में इन अशों को फिर दिया गया है, जहाँ चार विनायकों को एक विनायक, वर्तमान गणेश का रूप दे दिया गया है, मानव से ही मिलता जुलता काठक गृह्य सूत्र है। यह केवल विषय क्रम में ही नहीं मिलता किन्तु अनेक स्थलों पर शब्द शब्द भी मिलता है। इसका विष्णु धर्मशास्त्र से सम्बन्ध है। वैखानस गृह्य सूत्र एक विस्तृत ग्रन्थ है। इस की रचना प्राचीन ढंग की है। वाराह गृह्य सूत्र भी मैत्रायनीय सम्प्रदाय का एक बाद का ग्रन्थ है।

अथर्ववेद का सम्बन्ध कौशिक गृह्यसूत्र से है। यह केवल गृह्यसूत्र ही नहीं है, क्योंकि गृहस्थ सम्बन्धी संस्कारों का वर्णन करने के साथ-साथ इसमें कुछ तांत्रिक और अथर्ववेद की कुछ विशेष क्रियाएँ भी हैं।

इससे वैदिक भारतीय जीवन के साधारण दृश्य का पूर्ण चित्र मिल जाता है।

इन गृह्यसूत्रों में ४० संस्कारों का वर्णन है। गर्भ से लगाकर विवाह तक के १८ संस्कार शारीरिक कहे जाते हैं और शेष बाईस एक प्रकार के यज्ञ रूप हैं। इनमें से आठ और संस्कार भी गृह्य संस्कार हैं—जिनमें पाँच महायज्ञ और तीन पाक यज्ञ हैं और अवशेष श्रौत संस्कारों से सम्बन्ध रखते हैं। इन बातों के अतिरिक्त भी इनमें और बहुत सी बातें हैं। वर्षा के आरम्भ में नाग को भेंट देना, गृह निर्माण और नूतन गृह प्रवेश के संस्कार करना—इस सम्बन्ध में भूमि और निर्माण के विस्तृत नियम दिये हुए हैं। उदाहरणार्थ, पश्चिम की ओर को द्वार बनाने का निषेध किया गया है। लकड़ी या बाँस के मकान के बन चुकने पर पशु की बलि का वर्णन है। पशुओं के सम्बन्ध में अन्य भी अनेक रीतियाँ वर्णित हैं। उदाहरणार्थ जाति के हित के लिए साँड छोड़ा जाना, कृषि सम्बन्धी रीतियाँ पृथक् हैं। उदाहरणार्थ, कृषि से उत्पन्न हुए प्रथम फल को देने के संबंध की रीति, दुःस्वप्न, अपशकुन और रोग होने पर भी विशेष कृत्य करते बतलाये गये हैं। अन्त्येष्टि संस्कार में चिता पर गौ या बकरी भी जलाना कहा है, श्राद्ध का वर्णन खूब विस्तार से किया गया है, यह गृह्य सूत्रों के विषय का संक्षिप्त परिचय है।

धर्म सूत्र

सूत्र साहित्य की तीसरी शाखा धर्मसूत्र हैं, जिनमें दैनिक जीवन के नियमों का वर्णन है, यह धर्मशास्त्र (कानून या Law) पर सब से प्राचीन आर्य-ग्रन्थ हैं, धर्मसूत्रों का भी वेदों की शाखाओं से सम्बन्ध है, किन्तु इस सम्बन्ध में केवल तीन धर्मसूत्रों का ही नाम लिया जा सकता है। और वह तीनों कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के हैं, किन्तु यह मानने के ... ने हुए अन्य ग्रन्थों का भी

किसी न किसी वेद से कुछ सम्बन्ध आरम्भ में अवश्य था। धर्मसूत्रों के अत्यन्त प्राचीन काल में बताये जाने का यही प्रमाण है कि सूत्रकाल के आरम्भ में यास्क आचार्य ने जिन धार्मिक नियमों के अवतरण दिये हैं वह सूत्रों के ढंग पर हैं, अवश्य ही उस समय दो एक धर्मसूत्र बन चुके होंगे।

आपस्तम्ब धर्म सूत्र अभीतक सबसे अधिक सुरक्षित है, इसमें न तो प्राचीन सम्प्रदायवाले परिवर्तन करने पाये और न वर्तमान सम्पादकों ने ही कोई मिलावट की है। आपस्तम्ब कल्पसूत्रके तीन अध्यायों में से अट्टाईस और उन्तीसवें अध्यायों में यही धर्मसूत्र है, इसमें विशेष करके वैदिक विद्यार्थी के कर्तव्य, गृहस्थ के कर्तव्य, निषिद्ध भोजन, शौचाचार प्रायश्चित्त, विवाह, उत्तराधिकार और अपराध के विषयों का वर्णन है, उत्तर प्रान्तवालों की कुछ बातों को बुरा कहने से जाना जाता है कि इसका सम्बन्ध दक्षिण से है, जहाँ प्राचीनकाल में इस शाखा का प्रचार था। इसकी भाषा पाणिनी से पहिले की होने के कारण से बुलर साहिब ने इसका समय ईसा से ४०० वर्ष पूर्व माना है।

हिरण्य केशी धर्मसूत्र का इस ग्रन्थ से बहुत निकट सम्बन्ध है, क्योंकि पढ़ने पर दोनों में कुछ अधिक अन्तर प्रतीत नहीं होता, इस सम्बन्ध में यह ऐतिह्य है कि आपस्तम्बो से अप्रसन्न हो कर हिरण्यकेशी ने एक नयी शाखा की स्थापना कोनकन देश में की जो वर्तमान गोवा के समीप है, इस पार्थक्य का समय अधिक से अधिक ५०० ईस्वी हो सकता है। हिरण्यकेशी ब्राह्मण का वर्णन एक पाषाण लेख में पाया जाता है, हिरण्यकेशी कल्पसूत्र के उनतीस अध्यायों में से छब्बीसवें और सत्ताइसवें अध्यायों में यह धर्मसूत्र है।

तीसरा धर्म सूत्र बौधायन का है। इसको लिखित ग्रन्थों में धर्मशास्त्र कहा गया है, इस शाखा के कल्पसूत्र के इसका स्थान इतना निश्चय नहीं है, जैसाकि पहले दो का है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र से इसकी

विषयानुक्रमणिका को मिलाने से पता चलता है कि यह उन दोनों से भी प्राचीन है, बौधायन शाखा का पता आज कल नहीं चलाया जा सकता किन्तु यह प्रतीत होता है कि इसका सम्बन्ध दक्षिणी भारत से था, जहाँ प्रसिद्ध भाष्यकार सायण इसके मत का अनुयायी था। इस धर्मसूत्र में चारों आश्रमों के नियम, चारों वर्णों के नियम, अनेक प्रकार के यज्ञ, शौचाचार, प्रायश्चित, राजधर्म, अपराध का न्याय, साक्षी की परीक्षा, उत्तराधिकार के नियम, विवाह और स्त्रियों के स्थान का वर्णन किया गया है। चौथा खण्ड, जो कि पूर्ण रूप से श्लोकों में बना हुआ है संभवतः नवीन संस्करण है। तीसरे खण्ड का समय भी कुछ सन्दिग्ध है।

उपरोक्त ग्रन्थों के साथ ही गौतम धर्मशास्त्र की भी गणना की जा सकती है, यद्यपि यह किसी कल्प सूत्र का भाग नहीं है, तथापि किसी समय इसका किसी वैदिक सम्प्रदाय से अवश्य सम्बन्ध रहा होगा, क्योंकि गौतमों को सामवेद की राणायनीय शाखा की उपशाखा माना गया है, कुमारिल इस बात की पुष्टि करता है, इसके अतिरिक्त इसके छब्बीसवें खण्ड का शब्द-शब्द समविधान ब्राह्मण से लिया गया है, यद्यपि इसका नाम धर्मशास्त्र है तथापि ढंग और प्रबन्ध शैली से पूर्णतया धर्मसूत्र है, पूर्ण रूप से गद्य सूत्रों में बनाया गया है, इस विभाग के अन्य ग्रन्थों के समान पद्य की इसमें कहीं गन्ध तक नहीं है, इसका विभाग बिल्कुल बौधायन धर्मसूत्र के समान है, इसमें बौधायन धर्मसूत्र के कुछ अंश भी लिये गये हैं, इन्हीं अनेक कारणों से बौधायन धर्मसूत्र को ईसा से ४०० वर्ष पूर्व से इधर का नहीं समझा जाता।

वैदिक काल से सम्बन्ध रखनेवाला सूत्र ढंग का एक और ग्रन्थ वाशिष्ट धर्मशास्त्र है, इसमें तीस अध्याय हैं, जिनमें अन्त के पाँच बहुत बाद के बने प्रतीत होते हैं, इस ग्रन्थ के गद्य सूत्र पद्य में रल-मिल गये हैं, बिगड़े हुए त्रिष्टुभ से बाद के मनु आदि के श्लोक के स्थान पर अनेक बार काम लिया गया है इसमें भी आपस्तम्ब धर्मसूत्र के समान प्राचीन

श्राद्ध के विरुद्ध विवाह के प्रकार ही स्वीकार किये गये हैं, कुमारिल ने लिखा है कि उसके समय में वाशिष्ठ धर्मशास्त्र बड़ा भारी प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता था, और इसको केवल ऋग्वेदी ही पढ़ते थे, उसका अभिप्राय इसी वर्तमान ग्रन्थ से था। अन्य किसी से नहीं, क्योंकि कुमारिल के उद्धृत अंश वर्तमान छपे हुए संस्करण में पाये जाते हैं, यह समझा जाता है कि यह ग्रन्थ उत्तरी भारत का है, वाशिष्ठ गौतम का उद्धरण देता है, उसके अंश मनु के एक प्राचीन सूत्र से एकत्रित किये गये हैं, इसके अतिरिक्त मनुस्मृति में भी वशिष्ठ के ऐसे अंश हैं, जो छपे हुए ग्रन्थ में मिलते हैं, अतएव मनु का ग्रन्थ गौतम के बाद का है, यह संभव है कि ऋग्वेद से सम्बन्ध रखने वाले इस उत्तर के सूत्रग्रन्थ का काल ईसवी सन् से कई शताब्दी पूर्व हो।

कुछ धर्मसूत्रों के केवल अवतरण ही मिलते हैं, इनमें सब से प्राचीन वह है जिनका वर्णन दूसरे धर्मसूत्रों में आया है, इनमें सब से अधिक रुचि मनु के सूत्र में उत्पन्न होती है, क्योंकि उसका सम्बन्ध प्रसिद्ध मानवधर्म शास्त्र से है, वशिष्ठ में उसके अनेक अवतरणों में से मनु के संस्कार पृष्ठ में है वैसे के वैसे ही हैं, यह बिखरे हुए अंश ही संभवतः मानवधर्मसूत्र हैं, जिनके आधार पर मानव धर्म शास्त्र बनाया गया है जिसका वर्णन हम पृथक् अध्याय में करेंगे।

शंख और लिखित (ये दोनों भाई थे) के धर्मशास्त्र के कुछ गद्य-पद्यात्मक अंश मिलते हैं, यह तो न्याय विभाग में सूक्ति के समान बन गये थे। इस ग्रन्थ का उद्धरण जो कि संभवतः कानून के सभी विषयों का एक बड़ा भारी ग्रन्थ होगा पाराशर ने प्रमाण रूप में उपस्थित किया है। कुमारिल की सम्मति में इसका सम्बन्ध वाजसनेय सम्प्रदाय से था।

वैखानस धर्मसूत्र, जो कि चार प्रश्नों में लिखा गया है ईसा की तीसरी शताब्दी से पूर्व का नहीं हो सकता। यह वास्तव में वह धर्मसूत्र नहीं है, क्योंकि धार्मिक विषयों की अपेक्षा इसमें गृह्य धर्म का ही विशे-

वर्णन है, इसमें चारों आश्रमों और विशेष कर वानप्रस्थियों के नियम दिये गये हैं, क्योंकि वैखानस लोग वानप्रस्थही होते थे। यह तैत्तिरीय सम्प्रदाय की ही एक सब से छोटी शाखा प्रतीत होती है।

हमारे विचार में इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत से धर्मसूत्र रहे होंगे, जिनका कालभ्रम से अब कुछ पता नहीं चलता, क्योंकि प्रायः सभी वर्तमान स्मृतियाँ धर्मसूत्रों को ही श्लोक रूप में तोड़ मरोड़कर बनाई गई हैं; हमने वशिष्ट, आपस्तम्ब और बौधायन धर्मसूत्रों को इनकी स्मृतियों से मिलाकर स्वयं इस बात का अनुभव किया है।

शुल्वसूत्र

धर्माचरण में सहायता देनेवाला एक और प्रकार का भी सूत्र साहित्य है, उसे शुल्व सूत्र कहते हैं।

आपस्तम्ब कल्पसूत्र का तीसवाँ अर्थात् अन्तिम प्रश्न आपस्तम्ब शुल्व सूत्र ही है। इन प्रश्नों में वेदी, यज्ञकुंड आदि की रचना के प्रकार होते हैं। इनमें रेखा गणित (Geometry) के बड़े भारी ज्ञान का पता लगता है और वास्तव में भारतीय गणित शास्त्र [Indian Mathematics) पर यही सब से प्राचीन ग्रन्थ है। इसका संम्बन्ध कृष्ण-यजुर्वेद से है।

बौद्धायन शुल्व सूत्र भी कृष्ण यजुर्वेद का ही ग्रन्थ है।

शुल्क यजुर्वेद का सम्बन्ध कात्यायन शुल्व सूत्र से है।

संभवतः हिरण्यकेशी कल्पसूत्र के अट्ठाईसवें और उनतीसवें अर्थात् अन्तिम दो अध्यायों में हिरण्यकेशी शुल्व सूत्र हैं।

संभव है कि इसके अतिरिक्त भी बहुत से शुल्व सूत्र हों किंतु उनका कुछ भी पता नहीं लग सका।

प्रकाशित गृह्य सूत्र

(१) क० आश्वलायन गृह्यसूत्र सटीक, सम्पादक गार्ग्य नारायण Bible Indi 1869.

ख० आश्वलायन गृह्यसूत्र हरदत्ताचार्य कृत टीका सहित, सम्पादक गणपति शास्त्री त्रिवेन्द्रम संस्कृत सेरीज नं ७८, सन् १९२३

ग० आश्वलायन गृह्यसूत्र जर्मन अनुवाद सहित, अनुवादक A. F. Sternler Indische Hausnegen Germany 1864, 1865.

घ० आश्वलायन गृह्यसूत्र का इंगलिश अनुवाद, अनुवादक Oldenberg, Secred books of the East Vol. 29.

(२) क० शांखायन गृह्यसूत्र संस्कृत और जर्मन by H. Oldenberg Indische Studien, herausgegeben von A. Weber

ख० इंगलिश अनुवाद, Scered books of the East Vol. 29

(३) कौषीतकि गृह्यसूत्र सम्पादक रत्न गोपाल भट्ट बनारस संस्कृत सेरीज १९०८

(४) क० गोभिल गृह्यसूत्र सटीक, सम्पादक चन्द्रकान्त तर्कालंकार द्वितीय संस्करण Bibilothica Indica 1906, 1908.

ख० गोभिल गृह्यसूत्र जर्मन अनुवाद सहित by F. knawer, Dorpat 1884, 1886.

ग० इंगलिश अनुवाद Secred books of the East Vol. 29

(५) खदिर गृह्यसूत्र इंगलिश अनुवाद सहित S. B. E. Vol. 29

(६) जैमिनीय गृह्यसूत्र सम्पादक और अनुवादक W. caland, लाहौर १९२२ पंजाब संस्कृत सेरीज नं. २

(७) क० पारस्कर गृह्यसूत्र जर्मन अनुवाद सहित, अनुवादक A. F. Stezner Indische Hauoregeln A. K. M. II. 2 & 4 1876-78.

ख० पारस्कर गृह्यसूत्र हरिहर भाष्य सहित, सम्पादक लाधा राम शर्मा, बम्बई १८९०.

ग० इंगलिश अनुवाद G. S. Oldenberg S. B. E. Vol. 29

(८) क० आपस्तम्बीय गृह्यसूत्र सम्पादक M. Winternitz Vienna 1887

ख० अनुवाद आपस्तंब परिभाषा सूत्र सहित S. B. E Vol 30.

(९) क० हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र सम्पादक J. Kirste Vienna 1889.

ख० अनुवाद S. B. E. Vol. 30.

(१०) बौधायन गृह्यसूत्र, सम्पादक एल. श्रीनिवासाचार्य मैसूर १९०४ (Bibilothica Sanscrita, No. 32)

(११) भारद्वाज गृह्यसूत्र,, सम्पादक Henziette J. W. Solomons Leyden 1913

(१२) मानव गृह्यसूत्र, सम्पादक F. Kanuer St. Petersburg 1897

(१३) काठक गृह्यसूत्र, सम्पादक W. Caland D. A. V. कॉलेज, लाहौर

(१४) वैखानस गृह्यसूत्र Leipzig 1896

(१५) वाराह गृह्यसूत्र, सम्पादक R. शामशास्त्री गायकवाड़ ओरिएन्टल सेरीज नं २८ बरोडा १९२१

(१६) कौशिक गृह्यसूत्र, सम्पादक M. Bloomfield, New Haven 1890

प्रकाशित धर्मसूत्र

(१) आपस्तम्ब धर्मसूत्र
(२) बौधायन धर्मसूत्र
(३) वशिष्ठ धर्मसूत्र

} इनको हमने छपा हुआ पढ़ा किंतु पता स्मरण नहीं।

(४) वैखानस धर्म सूत्र Leipzig 1896

प्रकाशित शुल्व सूत्र

(१) आपस्तम्बीय शुल्व सूत्र जर्मन अनुवाद सहित by Albert Burk zeitschrift der Deutschen morgentandischen Gesellschaft (Z. D. M. G) 72, 1918.

(२) बौधायन शुल्वसूत्र इंगलिश अनुवाद सहित G. Thibaut, ' पण्डित ' Vols. IX

कल्पसूत्र का परिशिष्ट साहित्य

गृह्यसूत्रों के पश्चात् श्राद्धकल्प और पितृमेध सूत्र आते हैं, जिनमें

श्राद्ध आदि के नियम हैं वे ग्रन्थ प्रायः बाद के हैं, इस विषय के निम्न लिखित ग्रन्थ अभी तक छपे हैं—

(१) मानव श्राद्ध कल्प, सम्पादक W. Caland, Altindischer Ahnencult pp. 228 ff.
(२) शौनकीय श्राद्धकल्प ils pp. 240 ff.
(३) पिप्पलाद श्राद्धकल्प के कुछ अंश its pp. 243 ff.
(४) कात्यायन श्राद्धकल्प ils pp. 245 ff.
(५) गौतम श्राद्धकल्प S. Caland in Bijadragen tot de taal, landen volkenkunde van ned India, 6 Volg. deel I, 1884
(६) बौधायन पितृमेध सूत्र
(७) हिरण्यकेशी ,,
(८) गौतम ,,
} W. Caland. A-K, M. X. 3 1896

परिशिष्ट

इस प्रकार के साहित्य के पश्चात् परिशिष्ट आते हैं, जिनमें उन बातों को बड़े भारी विस्तार से लिखा गया है जो सूत्रों में संक्षेप से लिखी गई हैं। इनमें से गोभिल गृह्यसूत्र के परिशिष्ट विशेष महत्वशाली हैं। उनमें से एक गोभिल पुत्र का गृह्य संग्रह परिशिष्ट कहलाता है और दूसरा कर्म-प्रदीप। अथर्ववेद के परिशिष्ट धार्मिक इतिहास में विशेष चित्रित हैं, क्योंकि यह सब प्रकार के मंत्र तंत्र आदि का काम करते हैं। सबसे प्राचीन परिशिष्टों में से प्रायश्चित सूत्र भी महत्वशाली है। यह वैतान सूत्र का भाग है।

प्रकाशित परिशिष्ट

(१) क० गोभिल सूत्र गृह्य संग्रह परिशिष्ट, G. M. Bloomfield. L D. M. G Vol 35.

ख. Do by चन्द्रकान्त तर्कालंकार Bib. Indica 1910

ग गोभिलीय परिशिष्ट (सन्ध्याध्याय स्नान सूत्र, श्राद्धकल्प आदि) Bib India 1909.

(२) क कर्मप्रदीप प्रथम भाग जर्मन अनुवाद सहित A. S. 1886

ख कर्मप्रदीप द्वितीय भाग A. S. 1900

(३) अथर्ववेद परिशिष्ट, सम्पादक G M. Bolling £ J. non Negelain Leipzig 1909-10

(४) क अथर्ववेद शान्तिकल्प Transactiony of the American Philological - Association Vol. 35, 1904, 77 ff

ख. अथर्ववेद शान्ति कल्प Journal of the American Oriental Society 33, 1913, 265 ff.

(५) अथर्व प्रायश्चित्तानि, सम्पादक J. V. Negebin, New Harven 1915.

प्रयोग आदि

इस विषय पर सबसे बाद के ग्रन्थ प्रयोग, पद्धति और कारिकाएँ हैं, यह सभी ग्रन्थ या तो किसी विशेष वैदिक यज्ञ या संस्कार को बतलाते हैं या किसी विशेष रीति या पद्धति को बतलाते हैं। विवाह पद्धति, अन्त्येष्टि कल्प, श्राद्ध कल्प आदि ग्रन्थों का नाम इस विषय में लिया जा सकता है यद्यपि इस विषय के अधिकांश ग्रन्थ अभी तक लिखित रूप में पड़े हैं इनमें से कुछ के भारतीय संस्करण भी निकल गये हैं।

वैदिक-यज्ञ

मेरी धारणा है कि राजनैतिक उद्देश्य से वैदिक यज्ञों क

हुआ। सबसे प्रथम जब आर्य लोगों ने भरतखंड में अपनी सभ्यता का विस्तार किया था, तब सभ्यता के उन्नत होने के साथ-साथ ही छोटे-छोटे माण्डलिक राज्य बन गये। कुछ सुदृढ़ परिवार अपने आस पास के मनुष्यों और स्थानों के स्वामी बन बैठे। परन्तु इस प्रकार के माँडलिक राज्य प्रायः अशान्त और उत्तरदायित्व शून्य थे-एवम् संगठन रहित थे—परस्पर उनकी स्पर्धा चलती थी।

तत्कालीन मनस्वी लोगों ने इस सामाजिक संगठन की त्रुटि को समझा और उन्होंने प्रबल मंडलाधिकारियों को प्रोत्साहित करके अयोग्य तथा कमजोर राज्यों को अपने आधीन बना लेने को धर्म का स्वरूप दिया। राजसूय यज्ञ और अश्वमेध यज्ञों का प्रारम्भ यहीं से हुआ। राजसूय यज्ञ में राजा आस पास के यथा सम्भव राजाओं पर व्यर्थ ही चढ़ाई करके उन्हे परास्त करके अपने आधीन बनाले, उनसे कर लेते-और फिर अपने यज्ञ में बुलवा कर उन पर अपना प्रभुत्व जनता पर प्रकट करते। इन यज्ञों का वास्तव में वही प्रभाव होता था जो अङ्गरेजों के उन दरबारों का—जो दिल्ली में लार्ड कर्जन और सम्राट् जार्ज पञ्चम की अध्यक्षता में हुए थे। और जिसमें समस्त राजाओं को अप्रकट रूप में अङ्गरेजी साम्राज्य की आधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी। लार्ड कर्जन का १६ राजाओं से अपना चुगा उठवाना भी पिछले राजसूय यज्ञों के पराजित राजाओं की याद दिलाता था।

राजनैतिक संगठन की दृष्टि से ये यज्ञ और अकारण विजय पराजय आवश्यक थी। और यही कारण थे कि प्रतापी राजा लोग बारम्बार ऐसे यज्ञ करते थे। एक तरफ इन यज्ञों में जहाँ कमजोर राजाओं का सर्वस्व हरण किया जाता था—वहाँ ब्राह्मणों और ऋत्विगों को सर्वस्व दान भी किया जाता है। अनेक राजाओं ने सर्वस्व दान करके सत्पात्र वर में

रहने दिये थे। दान का महात्म्य बहुत चढ़ा बढ़ा था और ऋषि या ब्राह्मण को दान देने में बर्बाद होने पर भी लोग अपनी शेखी समझते थे।

इन सबका परिणाम यह हुआ कि यज्ञ करानेवाले और दान लेने-वाले ब्राह्मणों का समुदाय दिन-दिन बढ़ता गया। बड़ी बड़ी आजीविका के धन्धों का सदा प्रचार बढ़ा करता है। यज्ञ कराने का पेशा ब्राह्मणों के लिये सबसे मजेदार पेशा बन गया—बड़े-बड़े प्रतापी राजा—गरीब गाय की तरह आज्ञा मानते, सर्वस्व दान देते, और ईश्वर की तरह पूजते थे। बस यज्ञ का महात्म्य बढ़ा। पर जिस तरह एक कम्पनी के सफलता प्राप्त करते ही सैकड़ों नकली कम्पनियाँ खुल जाती हैं—वही दशा यज्ञों की हुई। जहाँ साम्राज्य कामना से बड़े बड़े यज्ञ होते थे, वहाँ सदेह मुक्ति, सर्पनाश, शत्रुनाश, पुत्रोत्पादन, वर्षा, रोगनाश आदि दुनिया भर के प्रत्येक कामों के लिये यज्ञ होने लगे। ब्राह्मण महाशयों ने यज्ञ को कामधेनु बना दिया। अच्छी दक्षिणा मिलने पर यज्ञ द्वारा प्रत्येक अच्छे बुरे कर्म कराये जा सकते थे। मेघनाद के और रावण के प्रतिहिंसा मूलक यज्ञ—जनमेजय का सर्पयज्ञ—त्रिशंकु का यज्ञ। ये सब इसी प्रकार के यज्ञ थे धीरे-धीरे इन यज्ञों में पशुवध का प्रसंग चला, और वेदों का संहिता भाग जब इन सब ऊल जलूल कार्यों के लिये यथेष्ट नहीं प्रमाणित हुआ तब इन यज्ञ पुरोहितों ने वेदों के ब्राह्मण भागों का निर्माण कर लिया।

इस सबका यह परिणाम हुआ कि पवित्र वेदों का ज्ञान, जो मनुष्य की आत्मा को सत्य मार्ग दिखाता था लुप्त हो गया। लोगों ने वेदों का मन्त्रार्थ जानना छोड़ दिया। केवल मन्त्रों को कण्ठ रखना, मन्त्रों में शक्ति और चमत्कार समझना, मन्त्रों का पाठ करके यज्ञ का विधि विधान करा देना—यही कर्मकाण्ड प्रबल हो गया। ज्ञान प्राप्त करके मुक्ति का मार्ग ढूँढने की अपेक्षा कर्म काण्ड द्वारा मुक्ति पाने की सरल चेष्टा लोग करने लगे। क्योंकि इस मार्ग में धन दक्षिणा खं

करने से ही अमीरों और राजाओं को मुक्ति मोल मिलने लगी—ज्ञान-काण्ड में तो योग के अष्टाङ्ग का अभ्यास करना पड़ता था।

जिन दिनों ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हुई-उन दिनों यज्ञों के महात्म्य का बड़ा भारी जोर था। फिर भी अनेक ऋषि और मनस्वी इस पाखण्ड और हिंसा के अनाचार से अत्यन्त ही नाराज थे। और वे विरोध भी करते थे। और एक सम्प्रदाय था जो यज्ञ-कर्म से श्रद्धा रहित हो गया था।

मुण्डेकोपनिषद् १—२०० में कहा गया है।

प्लवाह्येते अदृढ़ा यज्ञ रूपा अष्टादशोक्तमवरंयेषु कर्म।

एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढ़ा जरा मृत्युं पुनरेवापियान्ति

जिनमें निकृष्ट कर्म कहे गये हैं—वे अष्टादश जनयुक्त (१६ ऋत्विक्, १ यजमान १ यजमान पत्नि) यज्ञरूप प्लव समूह शिथिल हैं। जो मूढ़ इनको कल्याणकर समझकर इनका अभिनन्दन करते हैं—वे पुनर्बार जरा मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

इसी प्रकार यज्ञ की निंदा सूचक अन्य भी श्रुतियाँ पाई जाती है। इन थोथे आडम्बर मय कर्मकाण्डियों की अवहेलना ऋग्वेद में देखी जाती है। (१०-८२-७)

न तं विदाय य इमा जजान
अन्यद् युष्माकमन्तरं बभूव
नीहारेण प्रावृत जल्प्या
असुतृप उक्थ प्रावृतचरन्ति॥

अर्थात्—ये उस सृष्टिकर्त्ता को नही जानते, तुमसे इनमें अन्तर है नीहार द्वारा ये आच्छान्न हैं, केवल उच्चारण करके ही तृप्त होकर विचरण करते हैं।

सांख्य दर्शनकार महर्षि कपिल ने तीव्र उक्तियों द्वारा इस कर्म-पाखण्ड का विरोध किया। और केवल ज्ञान को मुक्त का मार्ग बताया। कपिल ने वेदों ही के आधार पर ज्ञान-काण्ड को सिद्ध किया है।

गीता मे (२।४२।४३।४५) में इसी कर्म-काड को लक्ष्य करके वेदों की निन्दा की गयी है।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवाद रताः पार्थ, नान्य दस्तीति वादिनः॥
त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
कामात्मानः स्वर्ग परा जन्म कर्म फल प्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति।

हे पार्थ! वेदों के मन्त्र पाठ में भूले हुए और यह कहनेवाले मूढ़ व्यक्ति कि इसके सिवाय और कुछ नहीं है, बात बढ़ा कर ऐसा कहते हैं कि तरह-तरह के यज्ञ आदि कर्म करने से फिर जन्म रूपी फल और भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। ······ इस लिए हे अर्जुन! वेदों में त्रैगुण्य की बातें भरी पड़ी हैं। तुम गुणातीत हो जाओ।

श्रीमद्भागवत् में हिंसावर्जित कर्मविधि को सात्विकी कहा है—

द्रव्य यज्ञै भक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति।
एष मा करुणो हन्या दतज्ज्ञोह्य सुतृप ध्रुवम।

यज्ञों का और उसकी पद्धतियों का ऋग्वेद में बहुत ही कम अस्पष्ट जिक्र है। यज्ञों का जोर यजुर्वेद के काल में हुआ है। ऋग्वेद की रचना के प्रारम्भिक दिनों मे भारतवर्ष में बस्ती बहुत ही कम थी, पीछे कहलाया है कि ऋग्वेद के सूत्रों में केवल पंजाब का ही उल्लेख है। उसके आगे के भारतवर्ष का कुछ भी समाचार नहीं है। उसमें सब युद्ध, सामाजिक संस्कारों और यज्ञों के स्थान केवल सिंध नदी और सरस्वती के तट हैं।

जिस यजुर्वेद में यज्ञों की परिपाटी का विस्तृत उल्लेख है, बल्कि यों कहना चाहिए कि यजुर्वेद का नामकरण और प्रथक्करण ही यज्ञों के लिए हुआ है—उसमें समाजशास्त्र का बड़ा ही गहन वर्णन है—जैसा पीछे बताया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि यजुर्वेद के काल में समाज बहुत ही सुगठित हो गया था—नगर बस गये थे—और वर्णों का संगठन हो रहा था। खासकर ब्राह्मण और क्षत्रिय ये दो वर्ण बड़ी तेजी से संगठित हो रहे थे।

ऋग्वेद के सूक्त और यजुर्वेद तथा उसके शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों को गम्भीरतापूर्वक मनन करने से पता चलता है कि यजुर्वेद के काल में आर्य जीवन में से वह सादगी और पवित्रता नष्ट हो गयी थी और उन सरल सूक्तों का अर्थ और उद्देश्य लोग भूल गये थे और अब का मुख्यधर्म अग्निहोत्र के प्रातः सायंकाल के साधारण नित्य कर्म से लेकर बड़े-बड़े विधान के राजसूय यज्ञों और अश्वमेध यज्ञों तक जो कई-कई वर्षों में समाप्त होते थे बन गया था। यज्ञों के नियम, छोटी-छोटी बातों का गुरुत्व, उद्देश्य और तुच्छ रीतियों के नियम, येही अब लोगों के धार्मिक हृदयों में भरे थे। येही थोथे विचार अब राजाओं और राजगुरुओं के विचार के विषय थे। और इन्हीं का ब्राह्मणों की अनथक गाथाओं में उल्लेख है।

यह पीछे बताया गया है कि ऋग्वेद में केवल पंजाब का जिक्र है। परंतु ब्राह्मणों में आधुनिक दिल्ली के आसपास के देश में प्रबल कुरुओं का-आजकल के उत्तरी प्रांत में विदेहों का, अवध में कौशलों का और बनारस के निकट काशियों का उल्लेख बारम्बार मिलता है। वास्तव में देखा जाय तो इन्हीं लोगों ने यज्ञ के आडम्बरों और पाखंडों को इतना बढ़ाया था इनमें जनक, अजातशत्रु, जन्मेजय और परीक्षित की भाँति प्रताप और विद्वान् राजा थे। जहाँ ऋग्वेद में सुदास राजा का जिक्र आता है—वहीं ब्राह्मणों में हमें इन्हीं राजाओं का बारम्बार हाल मिलता

है—मालूम होता है, ब्राह्मणों के काल में प्राचीन पंजाब भूला हुआ था—पंजाब के किसी भी राजा का ब्राह्मणों में जिक्र नहीं है।

यजुर्वेद जो यज्ञों का मूल स्तम्भ है, उसका नवीन संस्करण जनक के दरबारी विद्वान् याज्ञवल्क्य वाजसनेह ने किया है। उसी के नाम से शुक्ल यजुर्वेद-वाजसनेही संहिता कहाती है। ये याज्ञवल्क्य जनक की सभा के प्रधान पुरोहित थे—इन्होंने पुराने क्रम को सुधारने और मन्त्रों को व्याख्या से अलग करने के लिये ही एक नई वाजसनेही सम्प्रदाय स्थापित की थी। और फलस्वरूप एक नई संहिता और एक नवीन प्रसिद्ध ब्राह्मण शतपथ का निर्माण हुआ। पीछे बताया जा चुका है कि याज्ञवल्क्य ने यजुर्वेद का जो नवीन संस्करण सम्पादन किया था-वह शायद उनके जीवन काल में सम्पूर्ण नहीं हुआ था। वह अनेक मनुष्यों ने बहुत दिनों में पूर्ण किया था।

इन मनुष्यों का समुदाय एक सम्प्रदाय का रूप पकड़ गया था। और बहुत काल तक वह अपनी भिन्न परिपाटी पर यज्ञ कार्य करता रहा। इन सब बातों से यह परिणाम निकलता है कि वैदिक यज्ञों का विधान वास्तव में ऋग्वेद के काल का अत्यन्त प्राचीन विधान नहीं—प्रत्युत उससे बहुत आधुनिक काल का है। जब कि सुदास के युद्धों के बाद—कुरु और पाँचाल दिल्ली तथा कन्नौज तक भाग आये थे—और प्रबल राज्य बना चुके थे, और काशी तथा विदेहों के तथा कोशलों के राज्य भी विस्तार पा गये थे। ये यज्ञ राजाओं को किस तरह उपाधि दान देते थे—इसका वर्णन एतरेय ब्राह्मण के एक वाक्य से देते हैं:—

तब पूरब दिशा में कुरुओं ने सारे संसार का राज्य पाने के लिए ३१ दिन तक इन्हीं तीनों ऋक्, यजु की ऋचाओं और उन गम्भीर शब्दों से (जिनका वर्णन अभी किया जा चुका है) उस (इन्द्र) का प्रतिष्ठापन किया। इसीलिए पूर्वी जातियों के सब राजाओं को देवताओं के

लिए इस आदर्श के अनुसार सारे संसार के महाराजा की भाँति राज-तिलक दिया जाता है। और वे सम्राट् कहलाते हैं।

जब ब्राह्मण लोग क्रिया संस्कारों को बढ़ाये जाते थे और प्रत्येक क्रिया के लिए स्वतन्त्रतानुसार कारण बतलाये जाते थे, तब क्षत्रिय लोग जिनके सन्मुख राज्य व्यवस्था की कठिन समस्याएँ थीं और जो अधिक विचारशील और अनुभवी हो गये थे—ब्राह्मणों के इस थोथे—पाण्डित्यादर्प से ऊब गये थे। विचारवान और सच्चे लोग यह विचारने लग गये थे कि क्या धर्म केवल इन्हीं क्रिया संस्कारों और विधियों को सिखला सकता है ? वे लोग यद्यपि इन क्रिया संस्कारों के आडम्बरों का खुला विरोध नहीं कर सकते थे—और वे इन संस्कारों को वैसे ही आडम्बर से करते भी थे—परन्तु उन्होंने अधिक पुष्ट विचार प्रचलित किये—और आत्मा के उद्देश्य और ईश्वर के विषय में खोज की। ये नये और कृतोद्यम विचार ऐसे वीरोचित, पुष्ट, और दृढ़ थे कि ब्राह्मण लोगों ने जोकि अपने ही विचार से अपने को बुद्धिमान समझते थे, अन्त को हार मानी और क्षत्रियों के पास इस नये समुदाय के पाण्डित्य को समझने आये। उपनिषद् इस कथन की पुष्टि स्वरूप है जिनका उल्लेख आगे किया जायगा। कभी कभी राजाओं से और इन पुरोहितों से कर्म-काण्ड के विषय पर भी विवाद होता था। जिसका एक मनोरंजक उदाहरण शतपथ ब्राह्मण (११ प्र, ४, ५। ११। ६। २१) में है।

विदेह के जनक की भेंट कुछ ऐसे ब्राह्मणों से हुई जो अभी आये थे। ये श्वेतकेतु, आरुणेय, सोमशुष्क, सत्ययज्ञि और याज्ञवल्क्य थे। उसने उनसे पूछा:—

"तुम लोग अग्निहोत्र जानते हो ?"

तीनों ब्राह्मणों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दिया। पर किसी का उत्तर ठीक न था। याज्ञवल्क्य का उत्तर यथार्थ बात के बहुत निकट था। [illegible] ठीक नहीं था ! जनक ने उनसे कहा—

"तुम लोग कुछ नहीं जानते। और वह रथ पर चढ़ कर चला गया।" ब्राह्मणों ने कहा—"इस राजन्य ने हमारा अपमान किया है।" याज्ञवल्क्य रथ पर चढ़ कर राजा के पीछे गया, और उससे शंका निवारण की। तबसे जनक ब्राह्मण कहा जाने लगा।"

वास्तव में इन निरर्थक अग्निहोत्रों का वर्णन ऐसा विस्तृत हो गया था और क्रियाएँ इस तरह बढ़ गयी थीं कि याज्ञवल्क्य जैसे ब्राह्मण को भी याद न रहीं—शायद इसी गड़बड़ाध्याय को मिटाने के लिए उसे शुक्ल यजुर्वेद का सम्प्रदाय बनाना पड़ा, और उसका स्वतन्त्र ब्राह्मण शतपथ बनाने में अपना तमाम जीवन नष्ट करना पड़ा।

इन पुरोहितों को धीरे धीरे दक्षिणा का लालच बढ़ रहा था और वे अपने सादा तपस्वी जीवन से पतित हो रहे थे। छान्दोग्य उपनिषद् (५।१२।१७।१६।७।२४) शतपथ ब्राह्मण (३।२।४८) तैत्तिरीय उपनिषद् (१।५।१२ आदि) में धन, सोना, चाँदी, जवाहरात, घोड़ा, गाड़ी, गाय, खच्चर, दास दासी, खेत, घर और हाथियों का जिक्र है। यज्ञो मे सोना दान करना उचित समझा जाता था। चांदी के दान देने का बहुत ही निषेध था। ब्राह्मण ग्रन्थों मे इसका भी अनोखा कारण बताया जाता है।

"जब देवताओं ने अग्नि को सौंपा हुआ धन उससे फिर माँगा तो अग्नि रोई—और उसके जो आँसू बहे—वे चांदी हो गये। इसी कारण यदि चाँदी दक्षिणा मे दी जाय तो उस घर मे रोना मचेगा।"

और एक घटना का हाल सुनियेः—

(जनक विदेह) ने एक अश्वमेध यज्ञ किया। जिसमें याज्ञिकों को बहुत सी दक्षिणा दी गयी। उसमें कुरुओ और पांचालों के ब्राह्मण आये थे। जनक यह जानना चाहते थे कि उनमें से कौन अधिक पढ़े हैं। अतएव उन्होंने हजार गौओं को घिरवाया और प्रत्येक के सींगों मे १८

मोहर बाँधी। तब जनक ने उन सभों से कहा—"ब्राह्मणो! तुममें जो सब से बुद्धिमान हो वह इन गौओं को हाँक ले जाय।" इस पर उन ब्राह्मणों का साहस न हुआ। पर याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य से कहा—"वत्स! इन्हें हाँक कर घर ले जाओ।" उसने कहा—"सामन की जय।" और वह उन्हें हाँक कर घर ले गया।"

इस पर ब्राह्मणों को बड़ा क्रोध आया। वे घमण्डी ब्राह्मणों से प्रश्न पर प्रश्न पूछने लगे, पर याज्ञवल्क्य ने अकेले उन सब का मुकाबला किया। होत्री, अस्वल, जारतकरव, आरतभाग, मृत्युलाहचायोम, उपस्त-चाक्रायन, कहोल कौशिनतक्य उद्दालक आरुणी, तथा अन्य लोग याज्ञ-वल्क्य से प्रश्न पर प्रश्न करने लगे। पर याज्ञवल्क्य ने सब को निरुत्तर किया।

गार्गी खड़ी हुई और बोली—"हे ब्राह्मण तू क्या सब से विद्वान् है?" याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—"मुझे गौओं की आवश्यकता थी—मैंने उन्हें ले लिया।" गार्गी ने कहा—"हे याज्ञवल्क्य! जिस प्रकार कि काशी अथवा विदेहों के किसी योद्धा का पुत्र अपने ढीले धनुष में डोरी लगाकर अपने हाथ में दो नोकीले-शत्रु को वेधनेवाले तीर लेकर युद्ध करने खड़ा होता है उसी प्रकार मैं भी दो प्रश्नों को लेकर तुमसे लड़ने खड़ी होती हूँ, मेरे प्रश्नों का उत्तर दो।"

ये वर्णन उन प्राचीन मंत्र द्रष्ट्व-ऋषियों और इन यज्ञों के व्यवसाई पुरोहितों में जो अन्तर है इसे स्पष्ट करते हैं। इन्हीं याज्ञवल्क्य के दो स्त्रियाँ थीं। यह बात बिलकुल साफ है कि इन लोगों में यद्यपि विद्या और योग्यता थी तथापि इनका नैतिक पतन हो चुका था। और ये श्रीमंत—और विलासी हो गये थे।

बड़े-बड़े यज्ञ प्रायः वसंत ऋतु में चैत्र वैशाख के महीनों में होते थे। ऐतरेय ब्राह्मण के चौथे भाग को पढ़ने से इस विषय का अधिकार स्पष्ट

ऊपर बताया गया है कि अनेक विद्वान् पुरुष, ज्ञानी और सच्चे महात्मा लोग, यज्ञों से विरक्त होने लगे थे। इससे पाखंडी तथा स्वार्थियों के हाथ में यज्ञाडम्बर आया तब यज्ञों में एक सब से बड़ा दोष उत्पन्न हो गया। अर्थात् यज्ञों में पशुवध करना और मांस की आहुति देना प्रचलित हुआ।

ऐतरेय ब्राह्मण (१।१५) में लिखा है कि किसी राजा या प्रतिष्ठित महान् का सत्कार किया जाय तो बैल या गाय मारी जानी चाहिए। आधुनिक संस्कृत में मेहमान का एक नाम 'गोघ्न' गाय के मारनेवाला भी है।

(२) श्याम यजुर्वेद के ब्राह्मण में यह ब्यौरेवार लिखा है कि छोटे-छोटे यज्ञों में विशेष देवताओं को प्रसन्न रखने के लिये किस प्रकार का पशु मारना चाहिये। गोपथ ब्राह्मण में बताया गया है कि उनका भिन्न-भिन्न भाग किसे मिलना चाहिये। पुरोहित लोग जीभ, गला, कंधा, नितंब, टांग इत्यादि पाते थे। यजमान पीठ का भाग लेता था। और उसकी स्त्री को पेडू के भाग से सन्तोष करना पड़ता था।

अथातः सवनीयस्यपशोर्विभागं व्याख्यास्यामः, उद्धृत्या वदानानि, हनू सजिह्वे प्रस्तोतुः कण्ठः स सकुदः प्रति हर्तुः। श्येनं पक्ष उद्गातुर्दक्षिणं पार्श्वं सांसमध्वर्योः सव्यमुपगात्रीणां सव्योंसः प्रति प्रस्थातुर्दक्षिणा श्रोणि रथ्याक्षी *ब्रह्मणो वरसव्यं, ब्राह्मा च्छंसिनः* उरुः पोतुः *सव्या* श्रोणिर्होतुरपासकथं मैत्रावरुणस्यो रुरच्छुवाकस्य, दक्षिणार्देनिष्टः सव्याऽसदस्यस्यसदंज्ञानूकं च गृहपतेर्जाघनी पत्न्यास्तासां ब्राह्मणेन प्रतिग्राहयति, वनिष्टु हृदयं वृक्कौ चाङ्गुल्यानि दक्षिणो बाहुराग्नी घस्य सव्य आत्रेयस्य दक्षिणौ पादौ गृहपते र्व्रतप्रदस्य सव्यौपादौ गृहपत्न्या व्रतप्रदाया।
गो० २।१८।

शतपथ ब्राह्मण (३।१।२।२१) में इस विषय में एक मनोहर विवाद है कि पुरोहित को बैल का मांस खाना चाहिये या गाय का? अन्त में

परिणाम निकाला गया है कि दोनों ही को मांस न खाना चाहिये। फिर भी याज्ञवल्क्य कहते हैं कि "यदि नर्म हो तो हम उसे खा सकते हैं।" (१क)

२-... ...सधेन्वै चानडुहश्च नाश्नीयाद्धेन वनडुहौ वा इद७ँ सर्वं विभ्रितस्ते देवाअब्रुवन् धेनवनडुहौ वा इद७ँ सर्वं विभ्रितो हन्त यदन्येषां वयसां वीर्यं तद्धेन वनडुहयोर्दधामेति ... ... तदुहोवाच याज्ञवल्क्यो श्नाम्येवाह स७ँ सत्तं चेद्भवतीति

(श० ३।१।२।२१)

शतपथ ब्राह्मण (१।२।३।७।८) में पशु को यज्ञ में बलिदान देने के विषय में एक अद्भुत वाक्य है।

"पहले देवताओं ने मनुष्य को बलि दिया। जब वह बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया और उसने घोड़े में प्रवेश किया। तब उन्होंने घोड़े को बलि दिया। जब घोड़ा बलि दिया गय तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया और उसने बैल में प्रवेश किया। तब उन्होंने बैल को बलि दिया। जब बैल बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया। और उसने भेड़ में प्रवेश किया। जब भेड़ की बलि दी गयी तो यज्ञ का तत्व उसमें से भी निकल कर बकरे में प्रवेश हो गया। तब उन्होंने बकरे को बलि दिया। जब बकरा बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से भी निकल गया और तब उसने पृथ्वी में प्रवेश किया। तब उन्होंने पृथ्वी को खोदा और उसे चावलों और जौ के रूप में पाया। ... ... जो मनुष्य इस कथा को जानता है उसे (चावल आदि) का द्रव्य देने से उतना ही फल होता है जितना कि इन पशुओं के बलि करने से।" ❀

ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद सूत्र काल में वैदिक बलिदानों के संबंध की रीतियों के विस्तारपूर्वक वर्णनों के संक्षिप्त ग्रन्थ जो बनाये गये वे श्रौत-

सूत्र कहे जाते हैं। उन सूत्रों मे ऋग्वेद के दो, सामवेद के तीन, कृष्ण यजुर्वेद के चार; और शुक्ल यजुर्वेद के पूरे-पूरे प्राप्त हैं। बौद्धकाल तक ये सूत्र बनते रहे है, जब कि यज्ञ की हिंसा ज्वाला अन्धा-धुन्ध धधक रही थी।

इस मांस भक्षण का प्रभाव उपनिषदों तक में हो गया। बृहदारण्यक उपनिषद् ८।४।८ मे लिखा है कि जो कोई यह चाहे कि मेरा पुत्र विद्वान्-विजयी और सर्व वेदों का ज्ञाता हो—वह बैल का मांस चावल के साथ पकाकर घी डालकर खाय।

"अथ य इच्छेत् पुत्रो मे पण्डितो विजिगीतः समितो गमः सुश्रुषितां वाचं भाषिता जायेत सर्वान्वेदानुब्रवीत सर्वमायुरियादिति मा १८ सौद पाचयित्वा सर्पिष्मन्तं मश्नियातामीश्वरौ जनयीत वा औक्षणेन वा ऋषभेणवा। बृह० उ० ८।४।१८

श्रौतसूत्रों में दो प्रकार के यज्ञों का वर्णन है। एक हविर्यज्ञ-जिनमें चावल, दूध, घी, मांस आदि का अर्घ्य दिया जाता है। दूसरा सोम यज्ञ जिसमें सोमरस का अर्घ्य दिया जाता है।

हविर्यज्ञ ये हैं—१ अग्न्याधान, २ अग्निहोत्र, ३ दर्शपूर्णमास, ४ आग्रयण, ५ चातुर्मास, ६ निरुध पशुबन्ध, ७ सौत्रामणि।

सोमयज्ञ ये हैं—१ अग्निष्टोम, २ अत्यग्निष्टोम, ३ उक्थ्य, ४ षोडसिन, ५ वाजपेय, ६ अतिरात्र, ७ आप्तोयाम।

इसके सिवाय अन्य छोटी-छोटी क्रियायें जैसे–अष्टका जो जाड़े में की जाती थी। पार्वण—जो शरद पूर्णिमा को होती थी। श्राद्ध—पितरों को बलिदान। अग्रहायणी—जो अगहन में की जाती थीं। चैत्री-जो चैत्र में की जाती थीं। आश्वयुगी—जो असौज में की जाती थी। इनमें की बहुतसी धार्मिक क्रियाएँ और उनकी तिथि आजकल त्यौहार बन गये हैं। इन पूजा और यज्ञों को जोकि सर्व साधारण के लिये ।"

सब से बढ़कर धर्म कहा गया है। स्वर्ग प्राप्ति के लिये क्रियाएँ एक-मात्र द्वार मानी जाती थीं।

गौतम कहते हैं—"वह मनुष्य जो इन पवित्र कर्मों को करता है, परन्तु जिसकी आत्मा में भलाइयाँ नहीं हैं, तो उसे स्वर्ग नहीं मिलेगा। ... ... परन्तु वह, जो इन कर्मों में से केवल कुछ कर्मों को भी यथार्थ में करता हो, और जिसकी आत्मा में उत्तम भलाइयाँ मौजूद हैं तो वह स्वर्ग में निवास करेगा।" (८।२४।२५)

पूर्व मीमांसा में यज्ञों पर बहुत वाद-विवाद किया गया है। उसमें तीन रीतियों का उल्लेख किया गया है। अर्थात् पवित्र अग्नि को स्थापित करना, हवन करना, और सोम तैयार करना। ये प्रश्नोत्तर और उनपर होनेवाले विवाद अद्भुत हैं।

कुछ यज्ञों में ऐसा विधान है कि यजमान अपनी सब सम्पत्ति यज्ञ-करनेवाले ब्राह्मणों को देदे। यहाँ यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या राजा को भी अपनी सब भूमि चरागाह, सड़क, झील, तालाब ब्राह्मणों को दे देने चाहिये। इसका उत्तर दिया गया कि भूमि राजा की सम्पत्ति नहीं होती और इसलिये वह उसे नहीं दे सकता। राजा केवल देश पर राज्य कर सकता है। परन्तु देश उसकी सम्पत्ति नहीं है। क्योंकि यदि ऐसा होता तो उसकी प्रजा के घर भूमि आदि उसी की सम्पत्ति हो जाते। किसी राज्य की भूमि को राजा नहीं दे सकता—परन्तु यदि राजा ने कोई घर वा खेत मोल लिया हो तो वह उन्हें दे सकता है।

इसी प्रकार अग्नि में अपना (?) वलिदान करने का प्रश्न दूसरों को हानि पहुँचाने के लिये यज्ञ करने का प्रश्न और ऐसे ही अनेक प्रश्नों पर बड़ी बुद्धिमानी के साथ विचार किया गया है।

पूर्वमीमांसा में लिखा है कि बड़े यज्ञों में कार्य-कर्त्ता लोगों की पूरी संख्या १७ होती है। १ यजमान और १६ पुरोहित परन्तु छोटे अवसरों पर केवल चार ही ब्राह्मण होते हैं।

बलिदान की संख्या यज्ञ के अनुसार होती थी। अश्वमेध में सब प्रकार के बलि अर्थात् पालतू और जंगली जानवर थलचर, जलचर, उड़नेवाले, तैरनेवाले जानवरों को मिलाकर ६०६ से कम न होने चाहिए।

ऐसा प्रतीत होता है कि ज्यों-ज्यों हिंसा बढ़ी त्यों-त्यों यज्ञ की हिंसा का विरोध और उसके प्रति घृणा का प्रदर्शन भी होने लगा था। महाभारत में लिखा है:—

" वेद में जो लिखा है कि ' अज से यज्ञ करे तो अज का अर्थ बीज है—बकरा नहीं। ※

" गायें अवध्य हैं। इन्हें नहीं मारना चाहिये। " +

" हिंसा धर्म नहीं है। " †

"वह कोई धर्म ही नहीं जहाँ पशु मारे जायँ। ¶

चार्वाक सम्प्रदाय वालों ने—जिनका प्रादुर्भाव उन्हीं दिनों हुआ था जब कि खूब पशु हिंसा चल रही थी—उपहास से लिखा था—

" पशु के मारने से ही यदि स्वर्ग मिलता है तो यजमान अपने पिता को ही क्यों नही मार कर हवन कर डालता। "

मत्स्य पुराण अध्याय १४३ में यज्ञ के विषय में मनोरंजक वर्णन पाया जाता है।

※ अजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः
अज संज्ञानि बीजानि छागन्नो हन्तुमर्हथ। (महा०—अनुशा०)

+ अघ्न्या इति गवांनाम, क एतान् हन्तुमर्हति ... ...

† न हिंसा धर्म उच्यते,

¶ नैष धर्मः सतां देवा यत्र वध्येत वै पशुः।
पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते।

" ऋषि पूछने लगे कि स्वायंभुव मनु के समय त्रेता युग के प्रारम्भ में यज्ञ का प्रचार कैसे हुआ ! सतयुग के साथ उस युग का संधिकाल समाप्त होने के पश्चात्-त्रेता युग प्रवृत्त होने पर (?) कैसी व्यवस्था शुरु हुई ? ग्राम पुर नगर आदि की रचना होने के पश्चात्, कृषि आदि से औषधियों की उत्पत्ति होने के अनन्तर जीवन साधन के नाना काम धंधे शुरु होने के पीछे उन वेदोक्त मंत्रों से यज्ञ का प्रचार किस ढङ्ग से शुरु हुआ ? "

यह सुनकर सूतजी बोले—" वैदिक मन्त्रों का विनियोग यज्ञ कर्म से करके विश्व-भुक् इन्द्र ने यज्ञ का प्रचार किया । देवताओं का संगठन किया—सब यज्ञ के साधन इकट्ठे किये और अश्वमेध का प्रारभ हुआ । जिसमें अनेक महर्षि भी आये थे । इस यज्ञ में अनेक ऋत्विज् अनेक प्रकार के हवि, अग्नि के अर्पण करने लगे । जब सुस्वर साम गान होने लगा और पशुओं का आलंभन चलने लगा यज्ञ का सेवन करनेवाले देव-गण जब आहूत हुए-उस समय दीन पशुगणों को अवलोकन करके महर्षि गण उठे और इन्द्र से पूछने लगे कि तुम्हारी यज्ञ विधि क्या है ?

" यह तो बड़ा अधर्म है कि धर्म के नाम से अधर्म हो रहा है । यह पशु हवन विधि तो अनुचित है । तूने यह धर्म का नाश करने के लिये ही पशु मारकर अधर्म शुरु किया । यह धर्म नहीं है—अधर्म है । तुम्हे यज्ञ करना है तो यज्ञीय धान्य के बीजों से ही यज्ञ करो ।" इस प्रकार ऋषियों ने कहा परन्तु इन्द्र ने नहीं माना ।

"तब इन्द्र और ऋषियों में बड़ा विवाद छिड़ गया । यज्ञ जंगम वस्तुओं से हो या स्थावरों से ? यही विवाद था । जब ऋषि थक गये तब वे दुखी होकर सम्राट् वसु के पास गये ।

"ऋषि बोले—हे उत्तानपाद के वंशधर ! तूने कैसी यज्ञ-विधि देखी है-सो कह !

"राजा वसु बोले—द्विजों को मेध्य पशुओं से तथा फल मूलों ही से यज्ञ करना उचित है। यज्ञ का स्वभाव ही हिंसा है। यह मैंने देखा है।' ..

"राजा का यह भाषण सुनकर ऋषियों ने उसे श्राप दिया—"तेरा अधःपात हो," इससे उसका अधःपतन हुआ।

यही कथा कुछ फर्क से वायु पुराण में भी है। इससे पता लगता है कि कुछ विद्वान् लोग इन पशु वधों से अत्यन्त घृणा करने लगे थे। ये पुराण ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग के हैं।

महाभारत शान्ति पर्व (३४४) में भी ऐसी ही मजेदार एक, कथा है। "इन्द्र ने भूमि पर आकर यज्ञ किया। जब पशु की जरूरत हुई तब बृहस्पति ने कहा "पशु के लिए आटा लाओ।" यह सुनकर माँस के लालची (पशुगृद्धा) देवता बारम्बार बृहस्पति से कहने लगे कि बकरे के माँस का हवन करो।

"तब ऋषि बोले—यज्ञों में बीजों से (धान्यों से) यज्ञ करना चाहिये। 'अज' बीज का नाम है। बकरा मारना सज्जनों का काम नहीं यह श्रेष्ठ कृतयुग है। इसमें पशु कैसे मारा जायगा?"

"तब सब ने सम्राट् उपरिचर वसु को मध्यस्थ कर कहा कि हे महाराज! यज्ञ बकरे के माँस का करना चाहिए या वनस्पतियों का? कृपा करके फैसला कीजिए।" राजा बोला—पहले यह बताओ, किसका क्या मत है?

"ऋषि बोले—धान्यहवन हमारा पक्ष है। और पशुहवन देवों का।"

"वसु ने कहा—तब बकरे के माँस से ही हवन करना चाहिए। इस पर ऋषियों ने उसे श्राप दिया और उसका अध पतन हुआ।"

"अब वसु ने यज्ञ ठाना—उसमें बृहस्पति उपाध्याय था। प्रजापति के पुत्र सदस्य थे। एकत्,—द्वित, त्रित धनुष, रैम्य, अर्वावसु, परावसु, मेधातिथि, तांड्य, शान्ति, देशशिरा, कपिल, आद्यकठ, तैत्तिरी, कण्व, होत्र, ये सोलह ऋत्विन् थे। इस यज्ञ में पशु वध नहीं किया गया। युद्ध अहिंसक और शुद्ध था। इससे फिर उसका अभ्युदय और उन्नति हुई।"

(महाभारत शान्ति० अ० ३३६)

महाभारत ने इस बात पर भी प्रकाश डाला है कि यज्ञों में पशु-हिंसा वैदिक काल से बहुत पीछे चली थी।

"यह कृतयुग है, इसमें—यज्ञ में पशु अहिंस्य है। क्योंकि इसमें चारों कलाओं से पूर्ण धर्म है। इसके बाद त्रेता युग होगा—उसमें त्रयी विद्या होगी और यज्ञ पशु प्रोक्षित होकर मारे जावेंगे।"

(महाभारत शान्ति० अ० ३४०)

श्रीमद् भागवत् में एक स्थल (४ । २९ । ७ । ८) पर एक यज्ञ के विषय में लिखा है—"हे राजन्! तेरे यज्ञ में जो सहस्रों पशु तेरी निर्दयता से मारे गये वे तेरी उस क्रूरता का स्मरण करते हुए क्रोधित होकर तीक्ष्ण हथियारों से तुझे काटने को बैठे हैं।"

"इस दयाहीन ने जो यज्ञ में पशु मारे थे वे ही क्रुद्ध होकर, उसका यह अयोग्य कर्म स्मरण करते हुए, उसको कुल्हाड़ी से छिन्न-भिन्न करने लगे।"

निःसन्देह इन पाप रूप यज्ञों का नाश करने में महापुरुष बुद्ध भगवान् ने अत्यन्त पुरुषार्थ किया था। फिर भी बलिदानों की प्रथा हिंदू समाज से अभी निर्मूल नहीं हुई है। इस समय भी कुछ अन्धधर्मी हत्यारे लोग इन हत्यापूर्ण अत्यन्त घृणित कर्मों को यज्ञों और धर्मकृत्यों के नाम से पुकारते हैं। हाल ही में पूने के प्रसिद्ध मराठी

पत्र 'केसरी' में एक ऐसे ही लेख का विवरण छपा था जिसे हम पाठकों के ज्ञानार्थ ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं। यह लेख—दक्षिण के किन्हीं ब्राह्मण-धुंडिराज गणेश बापट दीक्षित सोमयाजी का लिखा हुआ था—

"गत फरवरी मास में मैंने औंध में अग्निष्टोम नामक सोमय किया था। और उसमें पशु हवन करके उसके अंगों की आहुतियाँ थीं। उस पशु हवन के सम्बन्ध में वैदिक धर्म की आज्ञा न माननेवा (?) ने बहुत कुछ लेख अखबारों में लिखे थे। .. ...

"ब्राह्मणादि त्रैवर्णियों के वर्णाश्रम विहित कर्तव्यों में यज्ञ कर्म मुख्य है। यज्ञ में हवन मुख्य है। और हवन में अनेक देवताओं के उद्देश्य से मन्त्रपठनपूर्वक विविध पदार्थों की आहुतियाँ दी जाती हैं। जैसे आज्य, चरु, पुरोडाश, सोमरस ये द्रव्य हैं। तथा अज, मेष, आदि पशुओं के अवयवों का माँस भी है।

"भारतीय युद्ध के पश्चात् जैन और बौद्धों ने वैदिक धर्म पर बड़ा भारी हमला किया—जिससे वैदिक यज्ञसंस्थाओं को बड़ा धक्का लगा। तथापि तत्पश्चात् गुप्तवंशीय राजा लोग—शातकर्णी, चालू कर पुलकेशी आदि राजाओं ने अश्वमेध जैसे यज्ञ (कि जिनमें २०० पशुओं का हवन विदित है) किये और वैदिक परम्परा को स्थिर किया। राजा जयसिंह ने भी अश्वमेध यज्ञ किया था। यज्ञीय हिंसा—हिंसा नहीं है। छांदोग्य उपनिषद् में कहा है कि:—

"अहिंस्यात्सर्वाणिभूतानि अन्यत्र तीर्थेभ्यः।

"शांकर भाष्य-तीर्थनाम शास्त्रानुज्ञा विषय, ततोऽन्यत्रेत्यर्थः।

शास्त्र की आज्ञानुसार जो कर्म किया जाता है—वही तीर्थ है। इस प्रकार के कर्मों को छोड़ कर अन्य कर्म में हिंसा करनी नहीं चाहिये। तात्पर्य श्री शंकराचार्य भी यज्ञीय हिंसा के विरोधी नहीं थे।

"देवताओं के उद्देश्य से यज्ञ प्रसंग में वेदोक्त विधि से जो पशु-हवन होता है—उसका नाम हिंसा नहीं है। अपना पेट भरने के

खाने की इच्छा से जो पशु हनन होता है-वह हिंसा है। वेदोक्त पशु-हिंसा में देवताओं के लिये मांसाहुतियाँ समर्पित करना ही मुख्य उद्दिष्ट होता है। हुतशेष मांस का भक्षण करना भी विधिविहित है। अतः शास्त्राज्ञा रक्षण करने की इच्छा से ही (?) इस हुतशेष का मांस भक्षण किया जाता है।"

"वर्णाश्रम विदित होने ही से यज्ञीय पशु हिंसा की जाती है। सोम भाग में पशु हिंसा के बिना कर्म पूर्ण ही नहीं हो सकता। जो निंदक अविचार से तथा वेद शास्त्र की मर्यादा का उल्लेख न करके इस प्रकार के सोमयागादि वैदिककर्मों का उपहास करते हैं-उनसे यज्ञकर्ता लोग कम अहिंसावादी हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अहिंसा परमधर्म अवश्य है, पर उसमें भी अपवाद है। क्षत्रिय जिस प्रकार मृगया और युद्ध में हिंसा करते हैं, उसी प्रकार यज्ञकर्ता यज्ञ में विधि के कारण पशु हनन करते हैं।

यज्ञ में जिस रीति से पशु हनन होता है—वह शस्त्रवध की अपेक्षा कम दुखदाई है।

उत्तर दिशा की ओर पैर करके पशु को भूमि पर लिटाना चाहिये। पश्चात् श्वासादि प्राणवायु बन्द करके नाक मुख आदि बन्द करे। इत्यादि सूचनाएँ शामिता को कही हैं।

'उदीचीनाम् अस्य पदो निद्धात्।

अंतरेवोष्माणं वारयतात्। ऐ० ब्रा० ६।७।

तथा—

अमायु कृण्वंतं संज्ञपतात्। तै० ब्रा० ३।६।६।

अर्थात्—पशु का हनन उसे न्यून से न्यून दुःख देते हुए करना चाहिये।